धर्मायण

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

अंक : 92
जनवरी-मार्च, 2019
पाष-चैत्र, 2075

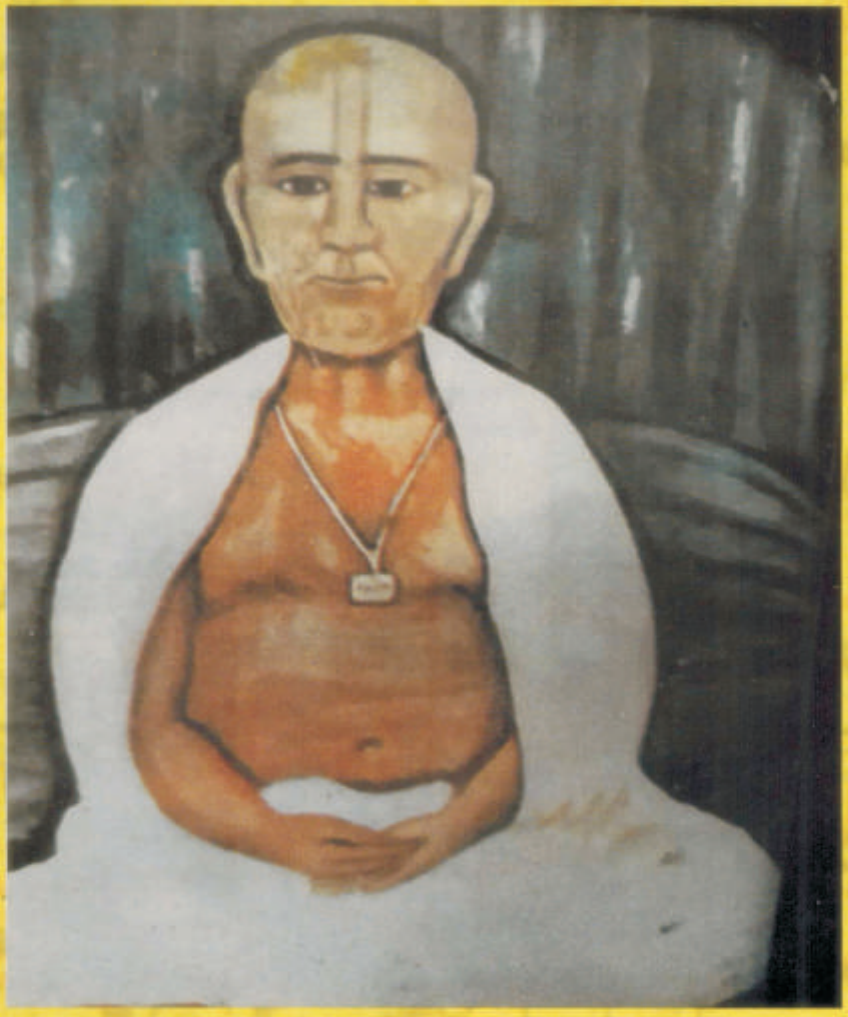

मिथिला के सुप्रसिद्ध सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाँई

महावीर मन्दिर प्रकाशन

मूल्य - पन्द्रह रुपये

दिनांक 19 फरवरी, 2019 को महावीर मन्दिर परिसर में स्थापित सन्त रविदासजी की प्रतिमा पर माल्यार्पित करते हुए न्यायमूर्ति राजेन्द्र प्रसाद, श्री जियालाल आर्य, श्री वासुदेव राम, मन्दिर के प्रबन्धक नागेन्द्र ओझा, श्री रामकिशोर दासजी महाराज, पं. भवनाथ झा आदि

भगवान् श्रीराम के आविर्भाव-दिवस चैत्र शुक्ल नवमी तदनुसार 13 अप्रैल, 2019 को महावीर मन्दिर परिसर में जयन्ती-उत्सव की विशेष पूजा एवं हनुमानजी के ध्वज की पूजा का भव्य आयोजन

धर्मायण

विषय-सूची

1. हनुमान चालीसा
   (प्राचीन पाण्डुलिपि से) 02
2. "सभा विलास" (1829 ई) से संकलित भक्तिपद 10
3. प्राचीन नगर पालिबोथरा
   डा. मोना बाला 12
4. धर्म क्या है?
   डा. राजनीति झा 16
5. दक्षिण बिहार के प्राचीन एवं प्रमुख सूर्यमन्दिरों का परिचय
   श्री रामयत्न सिन्हा 27
6. गौतम बुद्ध पर ज्योतिष विज्ञान का प्रभाव
   डा. भोला झा 30
7. मिथिला के संत : लक्ष्मीनाथ गोस्वामी
   श्री मगनदेव नारायण सिंह 36
8. बलि विमर्श - **आचार्य किशोर कुणाल** 39
9. संक्षिप्त रामकथा
   प. भवनाथ झा 46
10. संक्षिप्त व्रत-परिचय 52
11. महावीर कैंसर संस्थान की उपलब्धि 63

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक : 92

जनवरी-मार्च, 2019

माघ-चैत्र, 2075

प्रधान सम्पादक

भवनाथ झा

सह-सम्पादक

डा. राजनीति झा

महावीर मन्दिर प्रकाशन

के लिए

प्रो. काशीनाथ मिश्र

द्वारा प्रकाशित

तथा

प्रकाश ऑफसेट, पटना में मुद्रित

अक्षर संयोजक दिनकर कुमार

पत्र-सम्पर्क:

धर्मायण,

पाणिनि-परिसर,

बुद्ध-मार्ग,

पटना-800001

दूरभाष – 0612-2223798

E-mail: mahavirmandir@gmail.com

Web: www.mahavirmandirpatna.org

मूल्य : **पन्द्रह रुपये**

हनुमान चालीसा

(प्राचीन पाण्डुलिपि से)

इसमें कोई संदेह नहीं कि उत्तर भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में हनुमान चालीसा श्रद्धालुओं के द्वारा पाठ किया जानेवाला सबसे प्रचलित मन्त्र है। सभी अवसरों पर मंगल की कामना के लिए तथा संकट के निवारण के लिए हनुमानजी की स्तुति के रूप मे हनुमान चालीसा जन-जन में व्याप्त है। आज गीता प्रेस से प्रकाशित हनुमान चालीसा का पाठ प्रायः सभी श्रद्धालुओं को कंठस्थ हो गया है। यह गोस्वामी तुलसीदास की रचना मानी जाती है। इसके अन्त मे गोस्वामीजी का नाम भी आया है।

साहित्य के स्तर पर बहुत लोगों ने शंका की है कि इसकी कोई पुरानी पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं होती है। मैंने इसकी पाण्डुलिपियों का अन्वेषण किया तो अनेक पुस्तकालयों के सूचीपत्र में मुझे इसकी प्रति मिलने की सूचना प्राप्त हुई। इसकी एक प्रति रघुनाथ मन्दिर ट्रस्ट, जम्मू में मिली जिसके पाठ का प्रकाशन मैंने धर्मायण की अंक संख्या 90 में की थी।

हनुमान-चालीसा की दूसरी पाण्डुलिपि हाल में ही रेवा से मिला है जो http://indianmanuscripts.com पर उपलब्ध है। कुल 10 पृष्ठों की इस पाण्डुलिपि का लिपिकाल 1915 विक्रम संवत् अर्थात् 1859 ई. है। सुन्दर देवनागरी लिपि में काली एव लाल स्याही का प्रयोग कर इसे लिखा गया है।

इस पाण्डुलिपि का पाठ यहाँ विद्वानों के उपयोग के लिए प्रकाशित है।

श्री गणेशाय नमः।।

अथ लिख्यते हनुमान चालीसा।।

बुद्धिहीन तन जानि कै सुमिरौं तनय समीर।

बल बुधि विद्या दीजिए संपति सहित सरीर।।

चौपाई।।

जै हनुमान ज्ञान गुन सागर। जै कपीस तिहु लोक उजागर।।
रामदूत अतुलित बलधामा। अंजनि पुत्र पवनसुत नामा।।
महावीर विक्रम बजरंगी। कुमति निवारि सुमति के संगी।।
कंचन वरन गात गौरीसा। कुटिल कराल वेष है कीसा।।
अष्ट वज्र होउ भुजा विराजै। कांधे माझ जनेऊ छाजै।।
संकर सुवन केसरी नंदन। तेज प्रताप महाजन बंदन।।
विद्यामान हनुमान सो चतुर। भक्त काज करबे को आतुर।।
प्रभु चरित्र सुनिबे कौ रसिया। राम लखन सीता मन बसिया।।
सूक्ष्म रूप होइ सिया दिखाये। बड़े रूप होइ लंक जराये।।
भीम रूप होइ असुर संघारो। श्री रघुनाथ के काज सम्हारो।।
कालनेम करि कीन अहारा। सो जस जानत सब संसारा।।
आनि संजीवन लखन जियाये। श्री रघुनाथ के विरह छुड़ाये।।
रघुवर कीन्हेउ बहुत बड़ाई। तुम हो तात भरत सम भाई।।
सहसवदन तुम्हार गुन गाई। अस कहि श्रीपति कंठ लगाई।।
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा। नारद सारद सहित अहीसा।।
जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते। कविकोविद कहि सकहि कहा ते।।
तुम उपकार स्वामी कर कीन्हा। राम मिलाय सिया कह दीन्हा।।
तुम्हरे मन्त्र विभीषन माना। भो लंकेस सकल जग जाना।।
जगमग सहस जोति जिमि भानू। लीलउ ताहि मधुर फल जानू।।
प्रभु मुदरी मेली मुख माही। जलधि लाँधि आएउ छन माही।।
राम दुआरे तुम रखबारे। बिन अज्ञा नहि होइ पैसारे।।
सब सुख होइ तुम्हारे सरना। वेद पुरान मुनिन अस वरना।।
अपनो तेज सम्हारेउ आपू। तीनउ लोक हाँक से कापू।।

भूत पिसाच निकट नहि आबे। महावीर जब नाम सुनाबे।।
नासै रोग हरै सब पीरा। भजै निरंतन हनुमत बीरा।।
मन क्रम वचन ध्यान जो लाबै। संकट सो हनुमान छोडाबे।।
सब पर राम रहहि सिर ताजा। ताके काम हेत सो साजा।।
अवर मनोरथ जो कोउ लाबै। तन इक्ष्या जीवन फल पावै।।
चारिउ जुग सो प्रताप तुम्हारा। होहु प्रसिद्ध जगत उजियारा।।
राम पियारे सिया दुलारे। साधु संत के तुम रखबारे।।
अष्टसिद्धि नवनिधि के दाता। अस वर दीन्ह जानकी माता।।
राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहौ रघुवर के दासा।।
तुम्हरै भजन राम को पावै। जनम जनम के ताप लसावै।।
अंतकाल रघुपति पुर जाई। जो जन वै हरि भक्त कहाई।।
और देवता चित्त न धरई। हनुमंत वे सब सुख भरई।।
संकट तरन हरन सब पीरा। जो सुमिरै अंजन सुत वीरा।।
जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करौं गुरुदेव की नाईं।।
यह सत बेर पढै जो कोई। छूटै बंदि महासुख होई।।
जो कोउ पढै हनुमान चालीसा। होइ प्रसिद्ध सिद्ध गौरीसा।।
पाय परत इक कर निहोरा। तुलसीदास दास प्रभु तोरा।।
दोहा।।

पवन तनय संकट हरन मंगल मूरति रूप।
राम लखन सीता सहित हृदय बसौं सुर भूप।।

❑❑

संवत् 1915 अर्थात् 1859-60 ई. में लिखी गयी हनुमान-चालीसा की पाण्डुलिपि

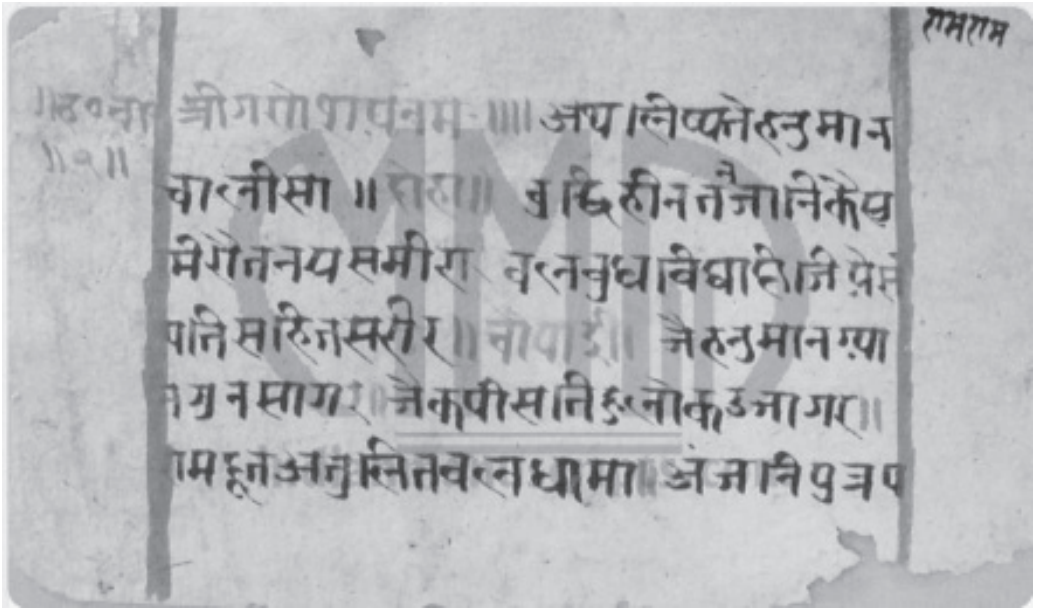

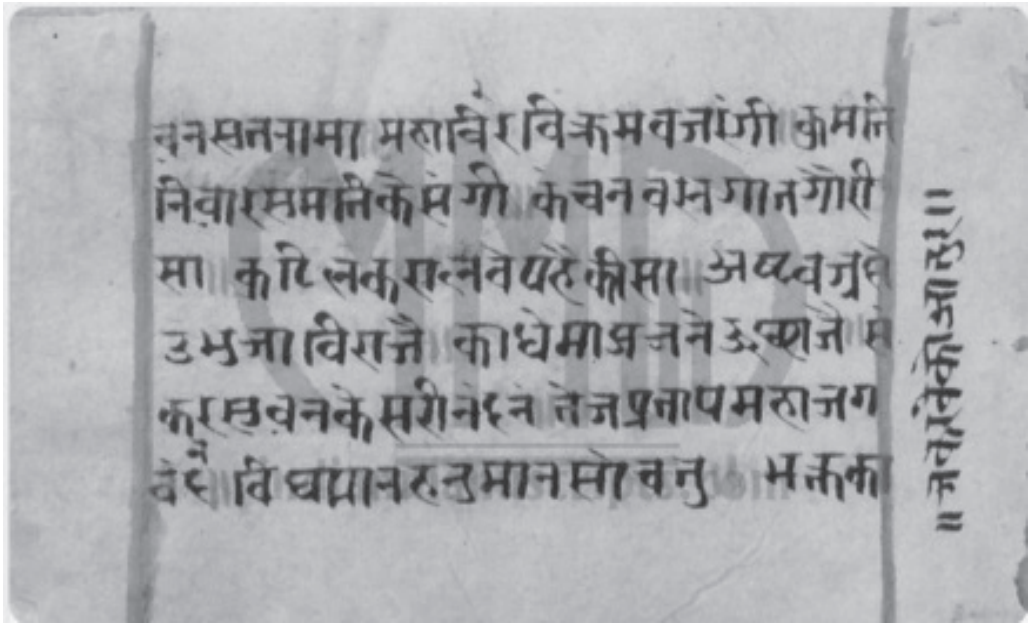

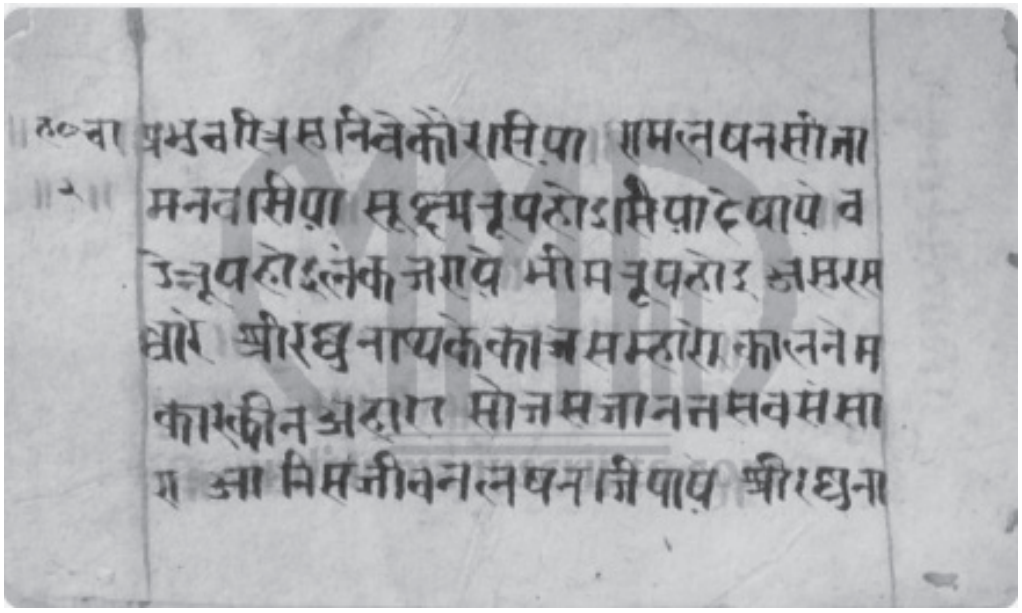

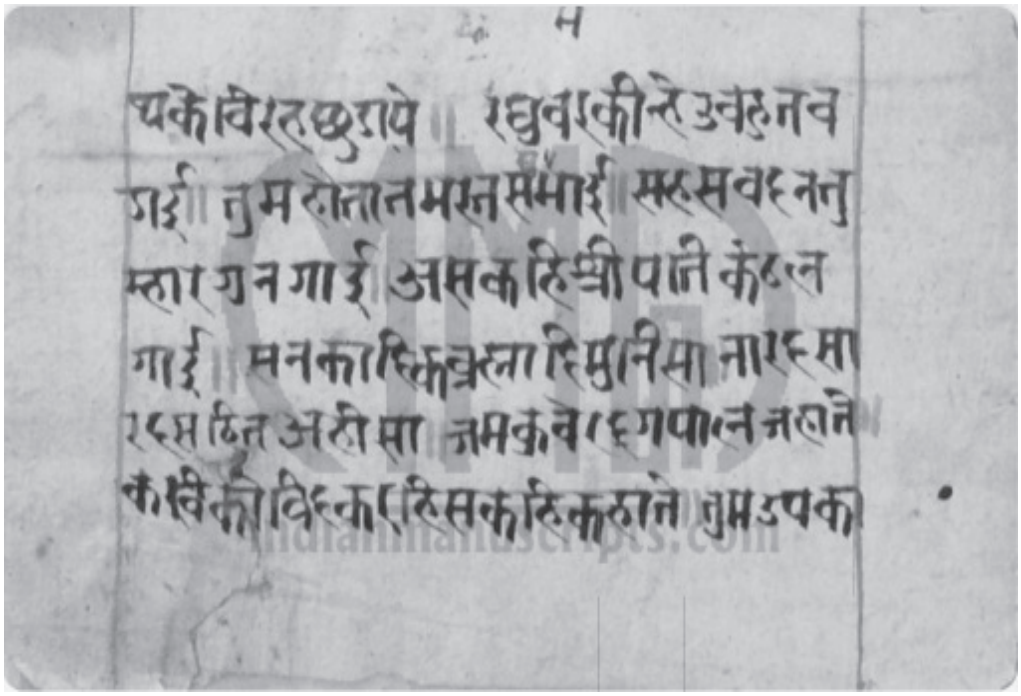

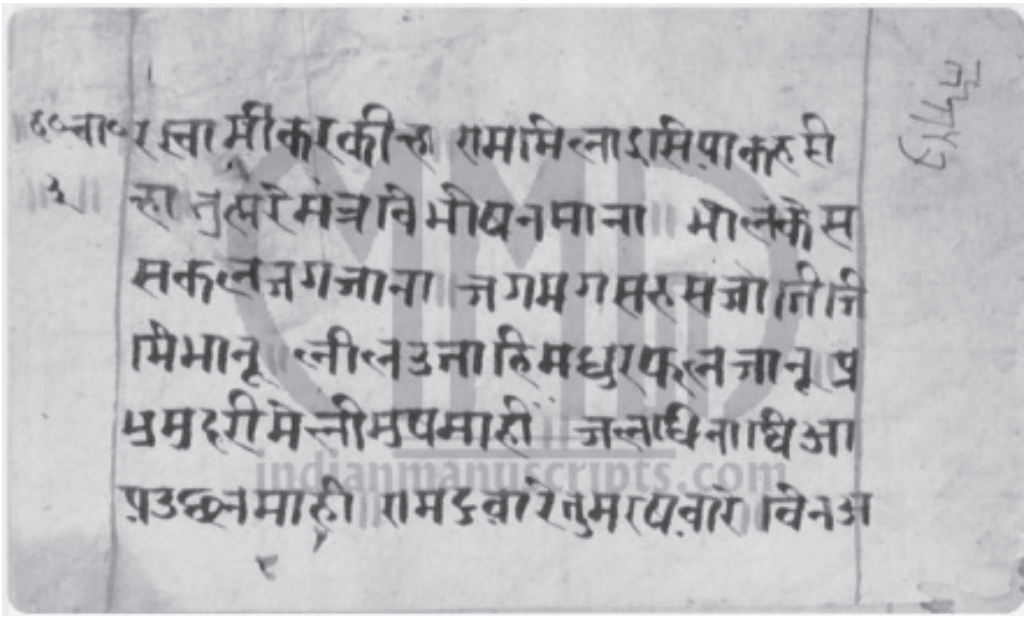

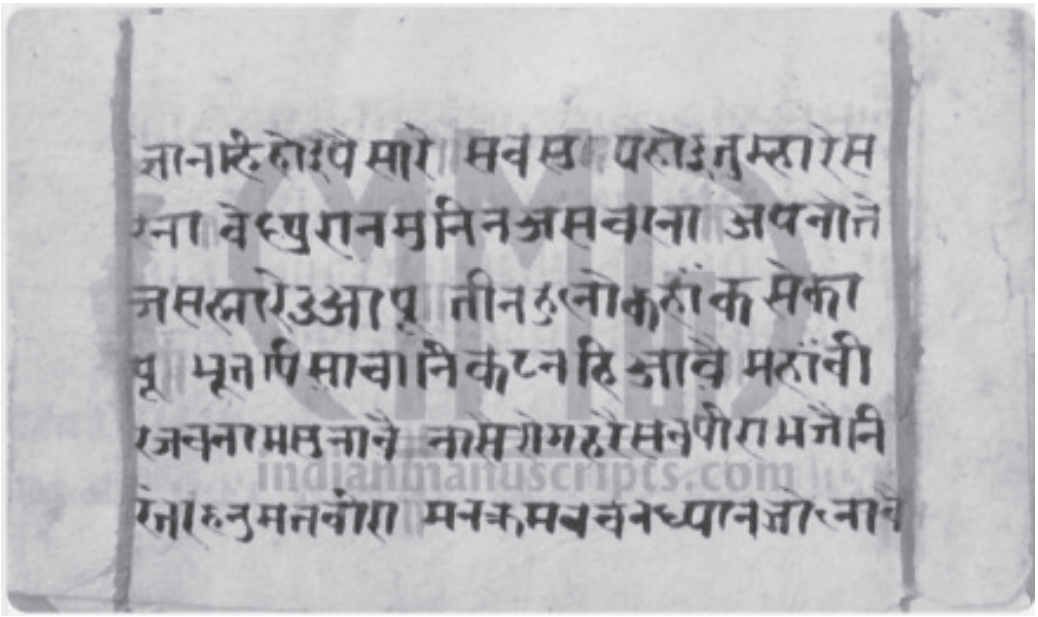

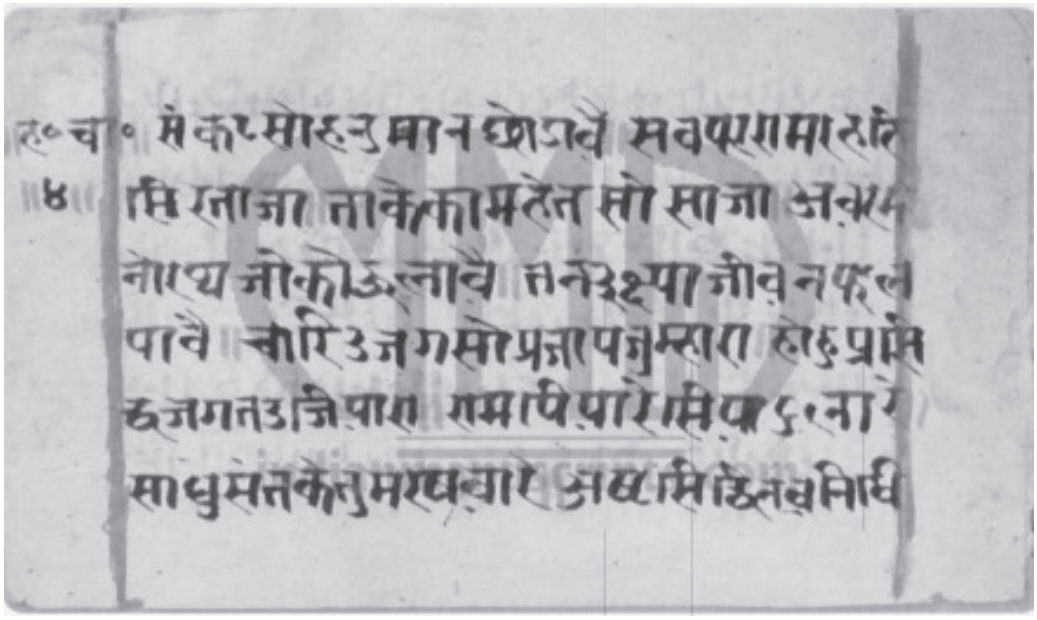

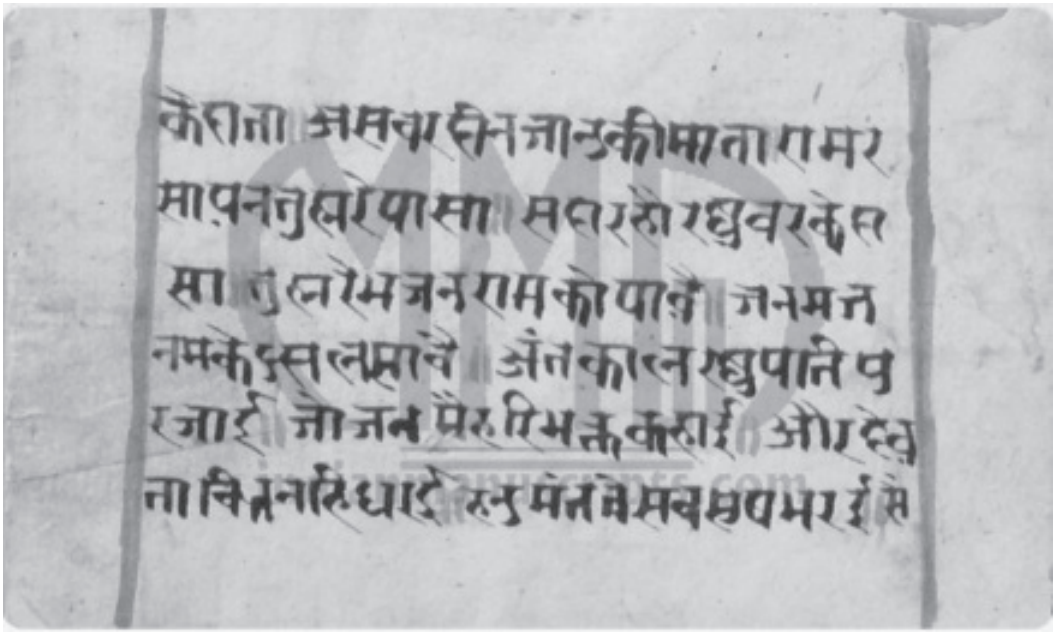

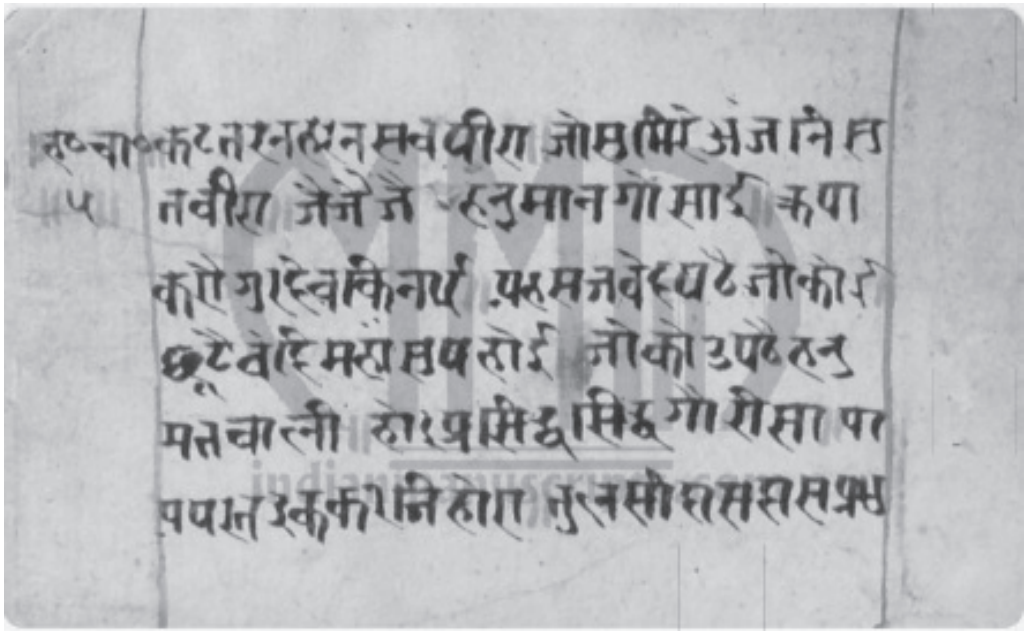

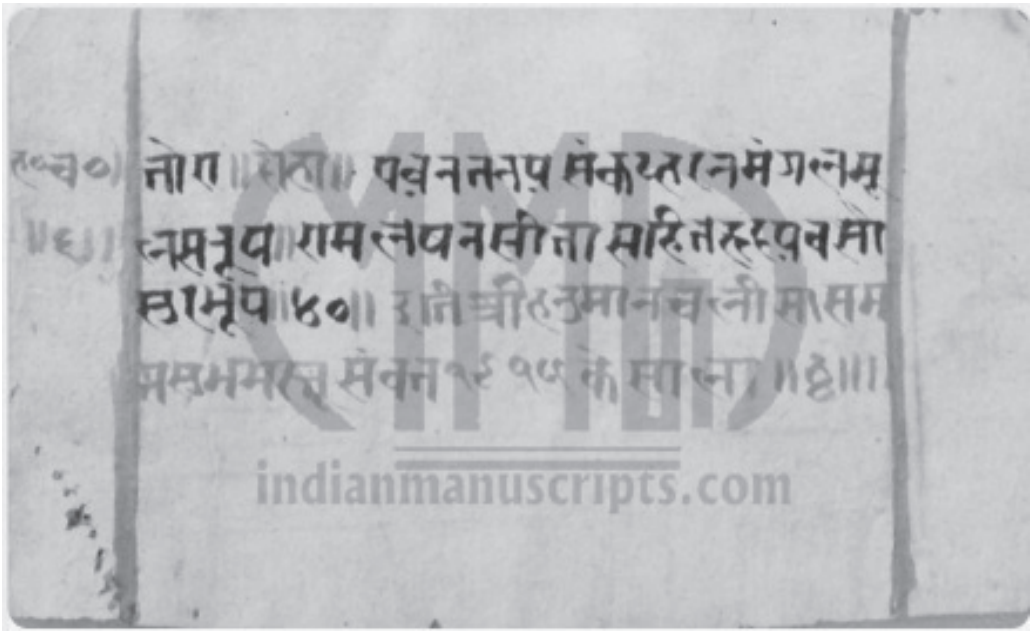

❑❑

"सभा विलास" (1829 ई.) से संकलित भक्तिपद

भूमिका

सभा विलास संग्रह नामक पुस्तक 'फोर्ट विलियम' द्वारा स्थापित कॉलेज के हिन्दी विषय के हिन्दुस्तानी अध्यापक 'कैप्टन विलियम प्राइस' ने कलकत्ता के संस्कृत पाठशाला के छापेखाने में 1829 में प्रकाशन करवाया। फोर्ट विलियम के कॉलेज की स्थापना 1801 ई. में हुई, तथा 1803 ई. में उस कॉलेज में बिहार के आरा जिला के निवासी श्री लल्लू लाल जी एवं पं. सदल मिश्रजी को भाखामुंशी के पद पर नियुक्त किया गया था। वह समय हिन्दी साहित्य के आदिकाल का था, जब हिन्दी और हिन्दुस्तानी को हिन्दी अध्ययन-अध्यापन करने के उद्देश्य से उस कॉलेज में रखा गया था। क्योंकि उस समय उर्दू भाषा ही अधिक प्रभावी थी। अतः हिन्दी भाषा को प्रभावी बनाने हेतु पहला प्रयास चल रहा था। उसी समय उनलोगों ने सभा विलास संग्रह नामक पुस्तक प्रकाशन करवाया, उनलोगों ने इस पुस्तक में विभिन्न विषयों के दोहा, भिन्न-भिन्न कवियों की रचनाएँ सम्मिलित कर इसका प्रकाशन करबाकर एक महान कीर्तिकर कार्य किया। भक्तिरस से ओतप्रोत यह पुस्तक वास्तव में आम जन-जीवन के लिए ज्ञानामृत के समान है।

इसमें, इसका मंगला चरण गणेश वंदना (सोरठा) छंद से प्रारम्भ कर विभिन्न दोहों के द्वारा भक्तिरस की गंगा प्रवाहित की गई है, जिसे पढ़ने एवं मनन करने के पश्चात् पाठकों को स्वतः ही लाभान्वित होने का सुअवसर प्राप्त हो जाता है।

जैसे-

।।सोरठा।।

विघनहरण गणराय मूषकबाहन गजबदन।
गणपतिचरण मनाय तबै काज कछु कीजिये।।1।।

।।दोहा।।

आन न भावत स्वाद इम पर्‌यौ गह्यौ सुमलिन्द।
कृष्णचरणअरविन्द कौ पियत सदा मकरन्द।।2।।
ममता भ्रमता के मिटे उपजे भ्रमता ज्ञान।
रमें जु रमता राम सों जम ता गहै न मान।।3।।
साध सक्यौ न तू साधसङ्ग लाय न सक्यौ समाध।

बिषै विषाद् उपाधि तज हरि पल आध अराध।।4।।
निगम अरू गीता ने कह्यौ पर्मपुनीता नाम।
वीत्यौ जन्म जु जात है भज ले सीता राम।।5।।
मन की मिटै मलीनता होय लीनता साथ।
नीकी यहै प्रवीनता भजियै दीनानाथ।।6।।

।।सभा बिलास।।

जिन पायौ हरि रस मरम मिटे भरम भ्रम दोय।
गह्यौ धर्म अपकर्म तज मान परमगति होय।।7।।
सुख कारण तारण तरण वारण लयौ उबार।
कंस पछारन मान हरि निरधारण आधार।।8।।
काम क्रोध लागी सुरत वहै अभागी जान।
हरि अनुरागी जासु मति सो बड़ भागी मान।।9।।
सुखदायक भायक भगत उपजायक आनन्द।
तीनलोकनायक जपौ अघषायक ब्रजचन्द्र।।10।।
पौरी पद निर्वान की यहै ज्ञान की गाथ।
आज्ञा वेद पुरान की जपौ जानकीनाथ।।11।।
जपें गणेश सुरेश से औ महेश मुख आप।
आनन्द देश विदेश में ऋषीकेश के जाप।।12।।
घने बाज गजराज हैं सुख के सने समाज।
बने ठने किहिं काज हैं जो न हेत ब्रजराज।।13।।
उपजावन आनन्द उर पतित सुपावन राम।
आवन जावन जात मिट जप बावन कौ नाम।।14।।
जौलौं घट में सांस है होय रहो हरिदास।
पूरै आस निरास की वासुदेव उर बास।।15।।
मान मुण्डमाली कह्यौ नरककुण्ड नहि जाय।
कोटि झुण्ड पापी तरे पुण्डरीक गुण गाय।।19।।

❑❑

प्राचीन नगर पालिबोथरा

- डा. मोना बाला

यद्यपि अब लगभग सभी इतिहासकारों ने यह मान लिया है कि मेगास्थनीज ने जिस पालिबोथरा का उल्लेख किया है वह वर्तमान बिहार की राजधानी पाटलिपुत्र नगरी ही है। किन्तु अतीत में इतिहासकारों ने इस विषय पर अनेक मत प्रकट किये थे और कुछ ने तो जबरदस्त साक्ष्यों के आधार पर इसे पाटलिपुत्र से भिन्न स्थान माना था। इन्हीं में से एक हैं- विलियम फ्रेंकलिन, जिन्होंने १८१५ ई. में चम्पा अर्थात् वर्तमान भागलपुर को पालिबोथरा मानने के पक्ष में अपना मत दिया था। उनके दिये हुए साक्ष्य आज भी इस विषय पर हमें सोचने के लिए विवश करते हैं।

ग्रीक एवं रोमन इतिहासकारों ने अपने ऐतिहासिक वर्णन में भारत के एक प्राचीन एवं समृद्ध नगरी की चर्चा की है। उस नगर का नाम पालिबोथरा है। पालिबोथरा को भारत का एक प्रसिद्ध बृहद् एवं अत्यंत समृद्धशाली एवं भव्य नगर के रूप में वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पालिबोथरा को परासी (Prasii) राज्य की राजधानी बताया गया है। मैगास्थनीज ने इस नगर का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह नगरी 80 Stadia अर्थात् 10 मील लम्बी तथा 15 Ditch चौड़ी क्षेत्र में फैली हुई थी। यह नगर चारों ओर से दीवार से घिरा हुआ था इसमें 64 फाटक (तोरण) थे, जो लकड़ियों पर धातु की कारीगरी किए हुए थे उन पर मोती आदि अमूल्य रत्न जड़ित थे।

It had sixty four gates. The door cases were made of strong metals. Inlaid with Pearls, Precious stones.[1]

(Inquiry con. Ist Part, page no-28)

यह वर्णन इस नगरी की सम्पन्नता का बखान स्वयं ही कर रही है। इतने सम्पन्न नगर की आधुनिक स्थिति जानने की उत्सुकता प्राय: सभी के मन में कौतुक का सञ्चार करता है।

1815 ई. में प्रकाशित सर्वेक्षण पुस्तक Inquiry Concerning a Site of Palibothra में William Franeklin ने इस भव्य नगरी पालिबोथरा को आधुनिक नगर भागलपुर को बताया है। इस विषय में उन्होंने अनेकानेक तथ्य उपस्थित किए हैं, जो इस प्रसिद्ध एवं प्राचीन नगरी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन को रोचक बना देता है।

वैसे पालिबोथरा नगरी की आधुनिक पहचान के प्रयास अनेक बार किए गए हैं। कई अंग्रेज इतिहासकारों एवं अंग्रेज अधिकारियों ने पालिबोथरा को पाटलिपुत्र अर्थात् वर्त्तमान पटना नगर से जोड़ा है। Late Sir W.Jone महोदय पालिबोथरा को पाटलिपुत्र नगर मानने के प्रबल समर्थक थे।

पालिबोथरा नगर के वर्णन में जो स्थितियाँ वर्णित की गई हैं उनके अनुसार यह नगरी पूर्व से पश्चिम 12 योजन की लम्बाई तथा उत्तर से दक्षिण 1/2 योजन या 18 कोश की चौड़ाई पर अवस्थित था। यह

नगर गंगा के दक्षिण में अवस्थित था एक अन्य नदी Erran Bhowah बताया गया है यह नदी गंगा से मिलती थी Erran Bhowah को तत्कालीन भारत की तीसरी बड़ी नदी बताया गया है। यह नदी गंगा से मिलने के बाद अपना अस्तित्व खो देती थी। इसकी हृदय स्थल पर कोशी और गंगा का संगम अवस्थित है।

मेगास्थनीज के अनुसार Palibothra के दोनों तरफ 80 Stadia और Breath 15 Ditch है। छः सौ फीट चौड़ी एवं 45 फीट गहरी थी।

फ्रैंकलीन महोदय ने पालिबोथरा शब्द को 'बलिबोथरा' से निष्पन माना है। फ्रैंकलीन महोदय ने चम्पा नगर (भागलपुर) में ही पालिबोथरा होने की सम्भावना बताते हैं। उन्होंने पहला तर्क यह दिया है कि ग्रीक पुस्तकों में वर्णित नदी, पर्वत आदि का वर्णन नगर की वर्त्तमान स्थिति से मेल खाता है। चम्पानगर जिसे बारम्बार पुराणों एवं आर्ष महाकाव्यों में अंग देश की राजधानी बनाया गया है। यह वर्त्तमान में भागलपुर नगरी है।

बिलियम फ्रैंकलीन जो इस्ट इण्डिया कम्पनी के मेजर थे। उन्होंने पालिबोथरा नगरी पर अपनी विशेष रुचि दिखाई। फ्रैंकलीन महोदय ने चम्पा नगर अर्थात् भागलपुर नगरी को ही पालिबोथरा नगरी बताया। अपनी बात को पुष्ट करने हेतु उन्होंने कहा कि भागलपुर के दक्षिण-पश्चिम में गंगा नदी बहती है। पुराणों के अनुसार पालिबोथरा को बलि का प्रदेश माना गया है, बलि से बलि बोथरम् हुआ। बलि के तीन पुत्र हुए -अंग, बंग और कालि। तर्क यह है कि अंग को अंगप्रदेश का राजा बनाया गया, बंग को बंगप्रदेश का राजा बनाया गया तथा कालि को कलिङ्ग.प्रदेश का राज्य प्राप्त हुआ। मार्कण्डेय, वायु, हरि, वान्सा और उत्तर पुराण (उत्तर भविष्य पुराण) के अनुसार कहा गया है-

भूपतेरवत्पुत्रो बलि नाम नराधिपः।।

बलि ने प्रथमतः वालिनी या वालिना कहा बाद में अपनी सबसे प्रिय पौत्री के नाम पर चम्पका रखा। बाद में यह नगरी चम्पा नगरी के नाम से जानी गयी।

बलिनो नाम नगरी ख्याता चंपावती पुरी।।
विस्तीर्ण तस्या कथितं पुरी रम्या मनोरमा।।

इस नगरी को गंगा के दक्षिण में अवस्थित बताया गया है-

द्वादशयोजनावर्त पूर्वपश्चिमदीर्घकम्।
दक्षिणे चोत्तरे चैव कोशं चाष्टादशं क्रमात्।
गंगायाः दक्षिणे कूले पुरी पुण्या महोदया।

मेजर विल्फोर्ड महोदय ने एक संस्कृत अभिलेख के अनुसार गंगा से एक योजन अथवा चार मील पश्चिम चम्पानगर को अवस्थित बताया है। ग्रीक इतिहासकारों के वर्णन में गंगा के साथ Erran Bhowah नदी का नाम भी आया है, इसे फ्रैंकलीन महोदय ने चन्द्रावती नदी माना है।

फ्रैंकलीन महोदय ने प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता Ptolemy को उद्धृत किया है। प्लूटेमी महोदय ने पालिबोथरा के विषय में बताया है कि यह नगरी 27 Latitude (अक्षांश) उत्तर पर अवस्थित है। 27 उत्तर अक्षांश के आस-पास कन्नौज नगरी है, कन्नौज नगरी 27 4'' उत्तर अक्षांश पर अवस्थित है। यदि इस तर्क के आधार पर हम विमर्श करें तो कन्नौज गंगा से दक्षिण तो है लेकिन यहाँ पर गंगा से कोई अन्य

नदी नहीं मिलती है साथ ही कन्नौज नगरी के आस–पास कोई पर्वत श्रृंखला नहीं उपस्थित है। यह संकल्पना ठीक जान प्रतीत नहीं होती।

मेजर रेनेल (Major Rennell) ने कुछ स्थलों को पालिबोथरा के Site City के रूप में चुना जिसमें पालिबोथरा नगरी होने की सम्भावना व्याप्त हो –

इलाहाबाद (Allahabad) – 25°22'' उत्तर

पटना (Patliputra) – 25°37'' उत्तर

भागलपुर (Bhagalpur) – 25°15'' उत्तर

राजमहल (Rajemahal) – 25°5'' उत्तर

इन नगरी की अक्षांशीय स्थिति वही है तथा ये सब नगरी गंगा के किनारे अवस्थित हैं। D'Anville और Dr. Robertson महोदय ने इलाहाबाद नगरी में पालिबोथरा नगरी देखी। इलाहाबाद में पालिबोथरा होने का कारण एक ग्रीक इतिहासकार Pliny ने पालिबोथरा नगर के समीप जमुना और गंगा का संगम स्थल बताया था। प्लीनी सेलूकस के साथ इस नगर का भ्रमण किया था। सेलूकस सिकन्दर का सेनापति था जो बाद में भारत में ही रह गया था तथा जिसने चन्द्रगुप्त मौर्य से पारिवारिक संबंध भी स्थापित किए थे। प्लीनी ने इलाहाबाद से पालिबोथरा की दूरी 378 मील बतायी। इलाहाबाद में गंगा–यमुना का संगम तो अवश्य है लेकिन जो दूरी बतायी गई है वह मेल नहीं खाती है। एक अन्य बात यह भी है कि इलाहाबाद के समीप त्रिवेणी है अर्थात् गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम है।

No. VII.

Legend of the Chandan, or Aranya Bhowah River, extracted from the Ootur Purana.

श्री

भवता कथिता ब्रह्मण बलिपुत्रनराधिपराजधानी ततस्तस्य चं पायां वन्निरूपितं दक्षिणादागता यत्र नद्यरण्यभवा स्मृता सापि पुण्या महाभाग कथं चन्द्रवती भवेत् तत्सर्वंहि महाभाग विस्तरा द्वदतःप्रभो ॥ गुरूरुवाच ॥ शृणु वत्स महाभाग साधु त्वं साधुवा दिनां। लोकानां च हितार्थाय त्वया पृष्टो महामते ॥ या कथा श्रवणात्पुण्यात्पापं यान्ति सहस्रधा। शृणु वत्स महाभाग विस्त राद्भदतो मम ॥ गंगायाः ऊतरे कूले पूरी रत्नावती शुभा। तत्रा वतारो भगवान् धर्म्मनाथो महाप्रभुः ॥ सोपि तीर्थंकरं देवं सोपि गत्वा पवापूरी। पद्मे दृष्टा महा देवी नद्यरण्यभवा तथा ॥ सोपि स्नात्वा महादेव पीत्वा च शलिलं शुभा। सुखसुप्त्वामहादेव सा नदी रूपधारिणी ॥ सा नम्रशिरसा भूत्वा कृतांजलीरभाषत। नमो ब्रह्मणदेवाय सास्वतः पुरुषाय च ॥ अव्यक्तायक रूपाय निर्गु णाय नमो नमः। त्रिगुणासत्वरूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे ॥ कालत्र यविधात्रे च नमः पुरुषरूपिणे। इत्येतद्विविधं स्तोत्रं सा कृत्वापि नदी शुभा ॥ तुष्टोभवति सो देवरभाषत नदिंप्रति। अद्यप्रभृति हे देवि ख्याता चंद्रावती भवेत् ॥ तव तीरेण दुर्भिक्षं न प्राप्नोति कदाचन। अन्तरधारा चा भवत् कथितोसौ महत्प्रभुः ॥ इतिऊत्त रपुराणे

बहुत सारे विद्वानों ने पालिबोथरा को पटना नगर ही माना। पटना गंगा-सोन के संगम पर अवस्थित नगर है। लेकिन पटना के समीप कोई पर्वत शृंख्ला नहीं है। हालाँकि डब्लू जॉनस जो एक बड़े विद्वान् थे वे पालिबोथरा को पटना मानने के प्रबल समर्थक थे। सर जॉनस के अलावे कुछ अन्य अंग्रेज विद्वान ने भी पालिबोथरा को पाटलिपुत्र के रूप में पहचान की है। फ्रैंकलीन महोदय इसे पालिबोथरा एवं पाटलिपुत्र शब्द समान होने के कारण एक मानते वाला तर्क दिया है। लेकिन संभव है कि यह पालिबोथरा नगरी सेलूकस आदि जुड़ी हो तो तत्कालीन समृद्ध नगरी मौर्यो की राजधानी पाटलीपुत्र थी, इस कारण सीधा तर्क है कि पाटलिपुत्र ही पालिबोथरा नगर है।

मेजर विलफोर्ड महोदय ने आधुनिक राजमहल नगरी में पालिबोथरा नगरी को साकार रूप में देखते हैं। उन्होंने राजमहल को बलि राजवंश के महल से जोड़ा है। उनके अनुसार बलि के महल के कारण ही इसे राजमहल बताया गया है, उन्होंने भी पालिबोथरा नगरी चम्पा नगर को ही माना है। राजमहल से कुछ दूरी पर ही गंगा से कोशी (कौशिकी) का मिलन स्थल है। इलाहाबाद जो गंगा और जमुना (यमुना) का मिलन स्थल है, से पूर्व जिसका नाम Prasii है। यहाँ से पूर्व वाले क्षेत्र में मगध एवं बंगाल है, उन्होंने Prasii या प्राची को पूर्व का राजा माना है।

फ्रैंकलीन महोदय ने 1813 ई. में कोशी एवं गंगा के मिलन स्थल को देखा जो भागलपुर से 8 मील दूर गोगहा नूल्लह है इससे उत्तर तथा दक्षिण में कुरूकट्टर नाम का गाँव था। इसके बारे में ग्रीक लेखकों ने लिखा है।

यदि भागलपुर नगर को देखें तो प्राचीन एवं आधुनिक पृष्ठभूमि तो पालिबोथरा होने के संभाव्य वर्णन इस नगर के इर्द-गिर्द उपस्थित होते हैं। भागलपुर नगर के समीप पर्वत है, यह मंदार पर्वत है। स्टराबो (Starabo) जो एक भूगोलविद् थे उन्होंने इसे Kingdom of Prasii की राजधानी कहा है। Prasii से अर्थ पूर्व है जो गंगा और Erranaboas के संगम पर है। मेगास्थनीज ने इस नगर की लम्बाई 10मील बताया है। प्लीनी ने इस नगर की चर्चा करते हुए कहा है कि यह भारत के शक्तिशाली एवं समृद्ध राज्य की राजधानी पालिबोथरा थी। बारम्बार पालिबोथरा नगर की समृद्धि एवं प्रसिद्धि को ग्रीक के इतिहासकार, भूगोलविद् तथा विद्वानों ने सराहा है।

पालिबोथरा नगरी होने की संभावना ज्यादा-से-ज्यादा चम्पा नगरी (भागलपुर) में है इसका कारण यह है कि भागलपुर नगरी गंगा से दक्षिण अवस्थित है, भागलपुर नगर के समीप मंदार पर्वत है। राजमहल के निकट गंगा-कोशी का मिलन स्थल भी है। कुल मिला कर प्राचीन पालिबोथरा नगरी वर्त्तमान की भागलपुर नगरी होने के संकेत साक्ष्य वर्णनों से अधिक मेल खाते हैं।

(Endnotes)

[1] Inquiry concerning the site of ancient Palibothra, 1st part, page no-28

पता- जस्टिस राज किशोर पथ,
कदम कुआँ, पटना

❑❑

धर्म क्या है?

– डा. राजनीति झा

जैसे अग्नि का धर्म है दाहकता, जल का धर्म है शीतलता उसी प्रकार मनुष्य का भी धर्म है- मनुष्यता। यह जिस स्तर का धर्म है, वह उसे मनुष्य बनाता है। इसके विना मनुष्यता का ही लोप हो जाता है। धर्म का यह सबसे व्यापक और आधारभूत स्तर है, जिसके विना वह उन्नति के मार्ग पर नहीं चल सकता; बल्कि खाई में गिरने लायक हो जाता है। भारतीय सनातन परम्परा ने इस स्तर के धर्म को सबसे आवश्यक माना है और इसी को 'आचार' भी कहा है। इसी स्तर के धर्म की व्याख्या विभिन्न प्रमाणों के साथ कर रहे हैं- इसी पत्रिका के सह संपादक डा. राजनीति झा

धर्मः धृ. धारणे- धृ धातोः मन् प्रत्यये धर्मः = कर्तव्य, व्यवस्था

धर्म क्या है? उसकी मंशा क्या है? उसका हेतु क्या है? यह जानने के लिए मैं प्रस्तुत निबन्ध में अपने को भारतीय धर्म-ग्रन्थों जिन्हें अब हिन्दू धर्मशास्त्र की संज्ञा भी मिल चुकी है, तक ही सीमित रखूँगा।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भारतीय धर्म से मेरा मतलब हिन्दू धर्म के अतिरिक्त बौद्ध, जैन और सिख धर्मों जिनका उद्भव और विकास भारत में ही हुआ है, से भी है। चूँकि धर्म की परिभाषा एवं अवधारणा आदि में इन सभी धर्मों के विचार एक-जैसे हैं, इसलिए यद्यपि मैं सिर्फ हिन्दू धर्म-ग्रन्थों से ही उद्धरण लेकर अपनी बातें पुष्ट कर रहा हूँ।

धर्म के लिए आमतौर पर अंग्रेजी शब्द 'रिलीजन' तथा उर्दू लफ्ज 'मजहब' इस्तेमाल किया जाता है, परन्तु धर्म की जो भारतीय अवधारणा है उसका सम्पूर्ण बोध इन शब्दों से नहीं होता।

दरअसल उपर्युक्त दोनों पर्यायवाची शब्द अलौकिक सत्ता के विश्वास पर आधारित मतवादों, कर्मकाण्डों और उपासना पद्धतियों पर आधृत पन्थो के बोधक हैं। वे यद्यपि नैतिकता की प्रशंसा करते हैं उस पर जोर नहीं देते और व्यवहार में उसकी उपेक्षा से चिन्तित नहीं होते। नैतिकता उनके लिए धर्म का मूलाधार नहीं है। जबकि भारतीय धर्म की अवधारणा समग्र जीवन पद्धति को समेटे हुए है और उसका मूलाधार सदाचार या नैतिकता है। ईश्वर या किसी अलौकिक सत्ता में विश्वास एवं आस्था उसके लिए आवश्यक नहीं है।

वस्तुतः दुनिया की किसी भाषा में वैसा शब्द नहीं जो भारतीय धर्म शब्द की पूरी भावना को समेटे हो। भारतीय 'धर्म, बेहतर सामाजिक वातावरण बनाने, स्वस्थ नैतिक एवं शान्तिपूर्ण जीवन जीने की कला का नाम है। सच पूछिये तो भारतीय अवधारणा के धर्म का पर्याय आदमीयता, ह्यूमैनिटी, मानवता या नैतिकता के आलावा और कई बातें समेटे है।

वस्तुतः हमारा धर्म मनोभावों, मनोवृत्तियों से सम्बंध रखता है और मनुष्य की उच्च मानसिक वृत्तियों-मनोविकारों पर आधृत है। उसका उद्देश्य बेहतर मनुष्य का निर्माण और समाज को अनुशासित एवं सुव्यवस्थित बनाकर बेहतर समाज और बेहतर विश्व का निर्माण है। अतः उसमें स्वास्थ्य, सदाचार, नैतिकता, शुचिता, शिष्टाचार, राजनीति, अर्थनीति, लोकनीति, आचार के नियम आदि सभी कुछ समाहित हैं। पर इन सबके मूल में सदाचार या नैतिक जीवन है। हमारा धर्म आचरणीय है, प्रचार और प्रदर्शन की चीज नहीं, मनुस्मृति प्रभृति हिन्दुओं के सर्वाधिक मान्य धर्म-ग्रन्थों में धर्म के अनेक लक्षण या अंग बताए गए हैं, जिनसे स्पष्ट है कि हमारे धर्म का सम्बन्ध मनोविकारों पर नियंत्रण से है तथा वह शुद्ध रूप से व्यक्ति के निजी प्रयत्न से आचरण में उतारने की चीज है। अहिंसा, अलोभ, अचंचलता, अक्रोध, अद्रोह, अमत्सर, अपरिग्रह, अनृशंसता, अनीर्ष्या, अस्तेय, अमय आदि नकारात्मक और इन्द्रिय निग्रह, तप, त्याग, तितीक्षा, धीरता, न्याय, परोपकारिता, ब्रह्मचर्य, विद्या, विवेक, विनम्रता, शील, शुचिता, शौर्य, सत्य, स्नेह, समत्व, सरलता, संतोष, सहिष्णुता, स्वाध्याय, सेवाभाव आदि सकारात्मक मानवीय सद्वृत्तियाँ और सदगुणों को जिनके लिए गीता में देवी सम्पदा शब्द का व्यवहार किया गया है, के आधार पर आचरण करना धर्म है।

दूसरे शब्दों में जिससे मनुष्य का आत्मिक उत्थान, शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति के साथ-साथ व्यक्ति की सुरक्षा, समाज का सुख और प्राणी मात्र का कल्याण संभव हो, तथा मनुष्य को देवत्व प्राप्त हो हमारे आर्ष-ग्रंथों में उसे ही धर्म कहा गया है।

महाभारत के अनुसार प्राणियों के अभ्युदय और कल्याण (तरक्की और सलामती) के लिए धर्म का प्रवचन किया गया है, अतः जो उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति करे, यानी जिससे दुनिया सुरक्षित रहकर उन्नति करे वही धर्म है, यह धर्मज्ञों द्वारा निर्णीत है।

जैसे-

प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यात् प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥

(शान्ति पर्व, 109/10)

क्योंकि यह जगत् को धारण करता है, अर्थात् संसार को सुरक्षित रखकर उसका पालन-पोषण करता है। धर्म को यह संज्ञा इसीलिए दी गई है। अतः जिससे प्राणियों का धारण और पोषण, कल्याण और अभ्युदय, संरक्षण और अभिवर्धन होता है, वही धर्म है, धर्मविदों द्वारा यही निर्णय दिया गया है।

जैसे-

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥

(शान्तिपर्व- 109/11)

मतलब यह है कि व्यक्ति के जिस आचरण, चाल-चलन ढंग-व्यवहार और कार्य-व्यापार से दुनिया सुरक्षित और सही सलामत रहते हुए

तरक्की करे, वही धर्म है। यह तभी होगा जब मनुष्य प्रकृति के शाश्वत नियमों का पालन करेगा तथा नैतिक जीवन जीएगा। इस परिभाषा में चर-अचर सब की सुरक्षा और अभिवृद्धि समाहित है, केवल मनुष्य की सुरक्षा और अभिवृद्धि नहीं। चूंकि मनुष्य की आंतरिक सदृवृत्तियों एवं सद्गुणों के आधार पर आचरण एवं व्यवहार से ही इस महान लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है, इसलिए उपर्युक्त सद्वृत्तियों और सदगुणों के आधार पर आचरण-व्यवहार ही धर्म है। संक्षेप में मनुष्य के चित्त की सद्वृत्तियों के आधार पर लोक कल्याणकारी आचार-विचार और आहार-विहार-व्यवहार मनुष्य का धर्म है। व्यक्ति, समाज और सभी प्राणियों के एक साथ उत्थान के लिए जो कुछ अपेक्षित और लाभदायक है वही धर्म है। हमारे मनीषियों ने उन सारे सद्भावों और सद्गुणों को जिनसे विश्व का विकास और शान्तिप्रद जीवन संभव है, वही धर्म है। सदाचार या नैतिकता उसका वास्तविक पर्याय है। व्यक्ति और समूह का सदाचार अर्थात् नैतिक जीवन ही वस्तुतः धर्म है।

महाभारत के अनुसार सदाचार या नैतिकता ही धर्म का स्वरूप है। सच्चरित्रता ही साधुओं (श्रेष्ठ व्यक्तियों) की पहचान है तथा श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा व्यवहार करते हैं वही सदाचार का स्वरूप है।

जैसे-

आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्रलक्षणम्।
साधूनां च यथा वृत्तमेतदाचारलक्षणम्॥

(अनु. पर्व- 104/9)

सदाचार शब्द सत् और आचार शब्दों के योग से बना है। सत् शब्द को परिभाषित करते हुए गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि सत् शब्द का प्रयोग सत्य, श्रेष्ठ (कल्याण) भाव तथा उत्तम कामों के लिए किया जाता है।

जैसे-

सद्भावे साधुभावे च सदित्यै तत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥

(गीता- 17/26)

साधु, यानी श्रेष्ठ व्यक्ति को परिभाषित करते हुए विष्णुपुराण में कहा गया है। सत् शब्द का अर्थ साधु, अच्छा या भला है, अर्थात्- साधु वही है, जो दोषरहित हो, जिसमें दुर्गुण की मात्रा न्यूनतम हो और जो नैतिक जीवन जीता हो। वैसे साधु व्यक्ति के आचरण को ही सदाचार कहते हैं।

जैसे-

साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते॥

(वि०पु०- 3/11/3)

नैतिक जीवन का अर्थ है अपने और पराये के भेदभाव से परे समत्व दृष्टि रखना, सबसे प्रेम करना, सबको सम्मान देना, सबके सुख-दुख का ध्यान रखना, दूसरे की किसी चीज पर लोभ नहीं करना, मुसीबत में फँसे को उबारना और वैसे काम किसी अन्य के साथ नहीं करना जिसे आदमी खुद अपने साथ किया जाना पसंद न करे।

लम्बे अनुभवों के आधार पर समाज के बुद्धिमान्, सदाचारी और कल्याणकामी लोगों ने कुछ कल्याणकारी गुणों की पहचान की है, जिन्हें हम जीवन मूल्य कहते हैं। उन जीवन मूल्यों को ही नैतिकता की भी संज्ञा दी गई है। इसलिए जो आदमी इस नैतिकता की कद्र करता है, उसके आधार पर आचरण और

अपने दैनिक जीवन का संचालन करता है, वही साधु या सदाचारी है और साधुता के उन्हीं गुणों का समुच्चय धर्म है। इसी भाव को महाभारत में युधिष्ठिर ने 'महाजनो येन गतः स पंथाः अर्थात्- श्रेष्ठजन जिस रास्ते जाते हैं वही मार्ग है, कहकर व्यक्त किया है।

संक्षेप में व्यक्ति एवं समाज के एक साथ उत्थान और संसार में शान्ति-सुव्यवस्था बनाए रखने हेतु जो आचार-व्यवहार वांछनीय है वही सदाचार या धर्म है। स्पष्टतः इसमें समूह-हित के लिए व्यक्ति-हित अर्थात् स्वार्थ के त्याग का भाव है। यह सदाचार या धर्म शब्द जिसका पर्याय शील भी है, इतने व्यापक अर्थोंवाला है कि इसमें वे सभी बातें समाहित हैं जो मनुष्य को एक अच्छा, यानी लोक-हित के साथ आत्महित की चिन्ता करनेवाला, स्वस्थ और शरीफ इंसान बनाती है। वस्तुतः शील सदाचार और नैतिकता धर्म के समानार्थी या पर्यायवाची शब्द हैं और इसी रूप में हमारे आर्ष-ग्रंथों में वे प्रयुक्त हुए हैं। इनका मूल बिन्दु है व्यक्ति और समाज या जीवन और जगत् का कल्याण एवं अभ्युदय। मेरे इस कथन की पुष्टि महाभारत के अधोलिखित दो श्लोकों से होती है जिनमें शील (सदाचार) और धर्म एक से भाव प्रकट करते हैं।

जैसे-

अद्रोहः सर्वभूतेषु, कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते॥

(शान्ति पर्व- 124/66)

और

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सत्ता धर्म सनातनः॥

(वनपर्व 297/35)

उपर्युक्त दोनों श्लोकों के भाव एकदम एक हैं, अन्तर सिर्फ धर्म और शील शब्द का है। मन, वाणी और कर्म द्वारा किसी प्राणी से द्रोह न करना, अर्थात् किसी की बुराई नहीं करना या सोचना, सब पर दया भाव रखना तथा दान देना यानी लोकहितार्थ त्यागवृत्ति अपनाना ही शील सदाचार नैतिकता या धर्म है। इसलिए मनुस्मृति कहती है- आचारः परमो धर्मः (सदाचार ही सर्वोपरि धर्म है और महाभारत में कहा गया है- आचारः प्रथमो धर्मः (यानी सदाचार प्रथम सर्वोत्तम धर्म है) सदाचार फलते धर्म (सदाचार से ही धर्म फलवान् अर्थात् उपयोगी होता है) आचारमेव मन्यते गरीयो ध र्म लक्षणम् (सदाचार या नैतिकता को ही धर्म का प्रमुख स्वरूप माना गया है) इसीलिए शील नैतिकता या सदाचार को मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ आभूषण भी कहा गया है- यथा- शीलं परम् भूषणम् यही नहीं, शील को ही धर्म का मूल माना गया है। महाभारत में ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी भी यही कही है कि धर्म, सत्य, सदाचार, बल और ऐश्वर्य सब शील के आधार पर ही स्थित है। शील ही हमसब की जड़ है। मतलब यह है कि जहाँ शील सदाचार या नैतिकता नहीं है वहाँ इनमें से कोई नहीं टिकता। निस्सन्देह शील इन सब का मूल है।

जसै-

धर्मः सत्यं तथा वृत्तं बलं चैव तथाव्ययम्।
शीलमूला महाप्राज्ञ सदा नास्त्यत्र संशयः॥

(शान्तिपर्व- 124/62)

धर्म भी स्वयं ही कहता है "**यतः शीलं ततो ह्यहम्।**

अर्थात्- मैं वहीं रहता हूँ जहाँ शील (सदाचार) है। इस प्रकार हम देख चुके हैं कि

शील, सदाचार, नैतिकता और धर्म एक ही वस्तु के अलग-अलग नाम हैं तथा सदाचार ही वस्तुतः धर्म है।

वामनपुराण में भी सदाचार के पालन को धर्म माना गया है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, पवित्रता, इन्द्रिय संयम, दान, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, अनहंकार, सत्य और मधुरवाणी अच्छे कार्यों में अनुराग तथा सदाचार का पालन- ये सभी धर्म परलोक देनेवाले हैं। मुनियों ने हमसे यही आदि धर्म बताया है।

जैसे-

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंयमः।
दानं दया च क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यममानिता।
शुभा सत्या च मधुरा वाङ्नित्यं सत्क्रिया रतिः।
सदाचारनिषेवित्वं परलोकप्रदायकाः।
इत्युचुर्मुनियो मह्यं धर्ममाद्यं पुरातनम्।

(वा.पु.- 15/2.3.4)

लेकिन धर्म या शील का व्यावहारिक जीवन में कोई शाश्वत स्वरूप नहीं है- क्योंकि- कोई ऐसा सर्वकालिक अपरिवर्तनीय स्वरूप जो हमेशा-हमेशा कायम रहे। यही धर्म है, ऐसा हर समय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि धर्म का व्यावहारिक स्वरूप देश-काल-पात्रानुसारी है। वह स्थान, समय, और पात्र के अनुसार बदलनेवाला है। जिसे हम किसी समय, किसी जगह और किसी आदमी के लिए धर्म कहते हैं, वही दूसरे समय, दूसरी जगह, और दूसरे आदमी के लिए भी धर्म हो यह आवश्यक नहीं। उदाहरणार्थ चोरी करना, अर्थात्- किसी की चीज उसकी इजाजत के बगैर ले लेना अधर्म है, यह सर्वमान्य धर्म लक्षण है, लेकिन क्या हर हालत में चोरी या अन्य अकरणीय कार्य करना या अभक्ष्य भक्षण अधर्म है? नहीं। दुर्भिक्ष में या जीवन संकट के समय जीवन रक्षा का कोई अन्य उपाय नहीं रहने पर चोरी करना या अभक्ष्य-भक्षण अधर्म नहीं है। ऐसे प्राणान्तक संकट के समय जीवन रक्षार्थ जो अकार्य या कुकार्य किया जाता है, कर्ता उसके दोष से प्रभावित नहीं होता, क्योंकि अपने प्राणों की रक्षा करना आदमी का सर्वप्रथम कर्तव्य या धर्म है। हमारे धर्म-ग्रन्थों के अनुसार कर्तव्य भी धर्म का पर्याय है। शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है-

दुर्भिक्षे चात्मवृत्यर्थे मेकायनमातस्तथा।
अकार्यं वाप्यभक्ष्यं वा कृत्वा पापान्न लिप्यते॥

अकाल में पीड़ित महर्षि विश्वामित्र ने जठराग्नि की ज्वाला शान्त करने अपने प्राणों की रक्षा के लिए एक चाण्डाल के घर से कुत्ते का मांस जिसे शास्त्रों ने अभक्ष्य और निषिद्ध माना है चुराने का प्रयत्न किया तथा मांगकर खाया फिर भी वे पतित नहीं हुए, क्योंकि जीविका प्राप्त करना धर्म से गुरूतर है। ''वृत्तिर्धमाद् गरीयसी''। इसलिए संकटकाल में निषिद्ध और अनुचित मार्ग में भी जीवन यापन का प्रबन्ध करना चाहिए। ''आपद्गतेन धर्माणामन्यायेनापि जीवनम्। खुद मनुस्मृति भी कहती है- तीन दिन का भूखा आदमी सातवें वक्त का उपवास तोड़ने के लिए यदि एक वक्त का 'भोजन, हीन कर्मवाले के यहाँ से भी चुरा ले तो दोष नहीं होताा।

तथैव सप्तमेऽभुक्तेऽभुक्तानि षडनश्नता।
अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः॥

(मनु. 11/16)

मतलब स्पष्ट है कि सामान्यतया जो कर्म धर्म माना जाता है विशेष परिस्थिति में उसका

स्वरूप वही नहीं रहता। आपत्काल का धर्म सामान्य काल के धर्म से भिन्न होता है। मनुष्य का सबसे पहला कर्तव्य या धर्म जीवन की रक्षा करना है। इसलिए प्राण संकट आ पड़ने पर पहले उससे उबरने का प्रयत्न करना चाहिए, यही धर्मादेश है।

इसी प्रकार, हमारे धर्म-ग्रंथों में सत्य-भाषण पर अत्यधिक जोर है। सत्य बोलने को धर्म और झूठ बोलने को आमतौर पर अधर्म घोषित किया गया है, लेकिन हर जगह हर परिस्थिति में यथातथ्य कथन व्यक्ति या लोक-हित के विरुद्ध अर्थात् अधर्म हो सकता है। कभी ऐसा भी समय आता है जब आत्मरक्षार्थ या परार्थ झूठ बोलना ही व्यक्ति और समाज के लिए लाभप्रद और कल्याणकारी होता है। इसलिए जहाँ सच बोलने से किसी निर्दोष आदमी, चाहे वह किसी जाति या वर्ण का हो, के वध की सम्भावना हो, वहाँ झूठ बोलना ही श्रेयस्कर है।

शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रतोक्तौ भवेद्वधः।
तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते॥

(मनुस्मृति-8/104)

मतलब यह है कि धर्म आदमी एवं अन्य प्राणियों की रक्षा के लिए होता है और उसकी रक्षा तथा अभिवृद्धि अगर झूठ बोलने से ही होती हो तो झूठ बोलना अधर्म नहीं, धर्म कहलाएगा।

एक दूसरा उदाहरण भी लें। कोई लुटेरा आपके पड़ोसी को लूटने आया है अथवा कोई हत्यारा क्रोध के वशीभूत हो आपके पड़ोसी की हत्या करने आया है और आपसे पड़ोसी के धन या उसका पता- ठिकाना जानना चाहता है। आप जानते भी हैं मगर यदि आप यहाँ सत्य बोल देते हैं तो आपका पड़ोसी बेकसूर लुटता या मारा जाता है। ऐसी स्थिति में आपका धर्म क्या बनता है? या ऐसी स्थिति में धर्म क्या है? निश्चय ही ऐसी स्थिति में न जानने का बहाना बना देना ही धर्म है। ऐसा झूठ वस्तुतः सत्य है, क्योंकि आपके झूठ से किसी का कल्याण होता है।

महाभारत के अनुसार जो अन्याय पूर्वक अपहरण की इच्छा से किसी के धन का पता लगाना चाहता हो, उसे उसका पता बताने से इन्कार करना ही धर्म है, ऐसा धर्मज्ञों का निर्णय है, क्योंकि शास्त्रानुसार सत्य वही है जो कल्याणकारी हो।

येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धनमिच्छन्ति कस्यचित्।
तेभ्यस्तु न तदाख्येयं स धर्म इति निश्चयः॥

(शान्ति पर्व- 109/14)

सत्य बोलना श्रेयस्कर है और सत्य का ज्ञान हितकर है लेकिन जो समस्त प्राणियों के लिए हितकर है वही सत्य है। यह सर्वोत्तम विचार है।

जैसे-

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यं ज्ञानं हितं भवेत्।
यद्भूतहितमत्यन्तं तद वै सत्यं परं मतम्॥

(महा. वनपर्व-213/31)

जो यथातथ्य कथन सारे संसार के लिए सुखदायी है वही सत्य है। जो इसके विपरीत है वह झूठ है, यह जान लो।

जैसे-

यथार्थकथनं यच्च सर्वलोकसुखप्रदम्।
तत्सत्यमिति विज्ञेयमसत्यं तद्विपर्ययम्॥

सत्य अर्थात् जैसा देखा-सुना अनुभव किया वैसा ही बोलना अच्छा है, परन्तु यथातथ्य बोलने से भी अच्छा है हितकर बोलना। नारद मुनि शुकदेवजी से कहते हैं- जिससे प्राणियों

का सर्वाधिक हित होता है, वही सत्य है। यही सर्वोत्तम विचार है।

जैसे-

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं मतं परम्॥

(महा. शान्तिपर्व-329/13)

नारद मुनि ने भी महर्षि गालब से कहा है कि सत्य बोलना श्रेयस्कर है, परन्तु उसे जानना कठिन है। मैं तो उसी को सत्य मानता हूँ जिससे प्राणियों का अधिकतम हित हो।

जैसे-

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम्।
यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं ब्रवीम्यहम्॥

(महा. शान्ति.-287/20)

जिससे प्राणियों का आत्यन्तिक हित हो वही सत्य है, यह धारणा सही है। जो इसके विपरीत हो वह अधर्म है, धर्म की यह बारीकी समझो।

जैसे-

यद् भूतहितमत्यन्तं तत् सत्यमिति धारणा।
विपर्ययकृतोऽधर्मः पश्य धर्मस्य सूक्ष्मताम्॥

(महा. वनपर्व- 209/4)

सत्य की सबसे संक्षिप्त परिभाषा है- ''सत्यं भूतहितं प्रोक्तं'' अर्थात् समस्त प्राणियों का जिससे कल्याण हो, उसे ही सत्य कहा गया है। जो यह नहीं समझता और सदा-सर्वदा यथादृष्ट को ही सत्य मानता, वह धर्म को नहीं समझता। वास्तव में, जिससे धर्म की रक्षा और प्राणियों का हित हो, वह सत्य है।

जैसे-

धर्मस्य रक्षणं येन स सत्यः प्राणिनां हितः।

(सत्यनारायणव्रत कथा-1/23)

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत एवं अन्य भारतीय शास्त्रों में जोर दे-देकर कहा गया है कि वही कथन या कार्य सत्य है, जो लोक-हितकारी हो। इसी प्रकार अहिंसा को सामान्यतः धर्म और हिंसा को अधर्म माना जाता है मगर विशेष परिस्थिति में आत्मरक्षार्थ या लोक-हितार्थ किसी की हत्या को भी धर्म माना गया है, क्योंकि धर्म का उद्देश्य ही लोक-कल्याण है। वामन पुराण के अनुसार शास्त्रों का यह निर्णय है कि एक व्यक्ति को बचाने के लिए बहुत का संहार नहीं करना चाहिए, परन्तु अनेक के कल्याण के लिए एक का वध करना किसी को अपराधी नहीं बनाता।

जैसे-

नैकस्यार्थे बहून् हन्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः।
एकं हन्याद् बहुभ्येऽर्थे न पापी तेन जायते॥

(वामनपुराण-58/45)

विष्णुपुराण के अनुसार एक अनर्थकारी को मार डालने से यदि बहुतों का मंगल हो तो उसे मार डालना पुण्यप्रद है।

जैसे-

एकस्मिन् यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि।
बहूनां भवति क्षेमं तस्य पुण्यप्रदो वधः॥

(वि.पु. 13/74)

महाभारत में 'व्यासजी' ने युधिष्ठिर से भी कहा है कि यदि एक व्यक्ति की हत्या से कुटुम्ब के शेष व्यक्तियों का कष्ट दूर हो जाय और एक कुटुम्ब का नाश कर देने से सारे राष्ट्र में सुख-शान्ति छा जाय तो वैसा करना धर्म का नाश करनेवाला नहीं।

जैसे-

एकं हत्वा यदि कुले शिष्टानां स्यादनामयम्।
कुलं हत्वा च राष्ट्रं च न तद् वृत्तोपघातकम्॥

(महा. शान्तिपर्व-33/31)

पातक रूप कर्म भी यदि सद्बुद्धिपूर्वक किसी शुभ उद्देश्य से किया जाय और उससे सचमुच कल्याण होता हो तो उस पाप से कर्त्ता दोषी नहीं होता। क्योंकि ऐसी हिंसा वस्तुतः अहिंसा है।

पातकं चापि यत-कर्म कर्मणा बुद्धिपूर्वकम्।
सापदेशमवश्यं तु कर्तव्यमिति तत्कृतम्॥
कथोचित तत् कृतमपि कर्त्ता ते न लिप्यते॥

(महा. अनुशासन पर्व)

निष्कर्ष यह कि लोक-हिताय किया गया कोई कर्म अधर्म नहीं, यद्यपि सामान्य स्थिति में वह अधर्म है। सामान्यतया अधर्म समझा जानेवाला कर्म भी यदि आत्मरक्षार्थ या पररक्षार्थ किया गया हो तो वह वस्तुतः धर्म है।

कभी-कभी संभावित बड़ी हिंसा को रोकने के लिए भी छोटी हिंसा अनिवार्य होती है। इसलिए वैसी हिंसा अपकर्म नहीं धर्म है। जिससे ज्यादा हिंसा होने की सम्भावना समाप्त हो वह अधर्म नहीं हो सकता। जैसे कोई नरभक्षी बाध किसी गाँव में घुस आया है तथा उसने एक-दो आदमी का अन्त भी कर डाला और यदि वह जीवित रहता है तो और कितनों का जीवन शेष कर देगा। ऐसे समय में जो शेर की हत्या कर देता है वह पाप का दोषी नहीं होता, क्योंकि उसने वह क्रूर-कर्म लोक-रक्षा के लिए किया है।

उपर्युक्त सभी उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि धर्म का बाह्य स्वरूप परिवर्तनशील है, यद्यपि धर्म सनातन है उसके कुछ सनातन सिद्धान्त हैं जो सर्वकालिक और सार्वत्रिक है। उसका मूल स्वरूप अपरिवर्तनशील है, एकरूप है, पर उसका बाह्य या व्यावहारिक रूप देश-काल-पात्रानुसार परिवर्तनशील है। मनुस्मृति में यह बात स्पष्टतः कही गई है कि सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के धर्म एक ही नहीं भिन्न-भिन्न होते हैं। अर्थात् धर्म का व्यावहारिक रूप समयानुसार बदलता रहता है।

जैसे-

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः॥

(मनु.- 1/85)

यही बात पराशरस्मृति (1/22) में भी थोड़ी शाब्दिक भिन्नता से कही गई है। उसमें 'युगह्रासानुरूपतः की जगह युगरूपानुसारतः लिखा है, मगर दोनों बातें एक ही है। अन्य स्मृतियों में भी यही बात है। मतलब यह कि समय के परिवर्तन के साथ-साथ धर्म का व्यावहारिक स्वरूप बदलता है। वह हमेशा एक ही रूप नहीं रहता। इस बात को महाभारत में व्यासदेव ने निम्नरूप में लिखा है-

देश, काल, पात्र और कर्म विशेष पर विचार करने से एक ही कर्म भिन्न-भिन्न मनुष्य के लिए धर्म और अधर्म रूप हो जाता है। मतलब यह कि किसी समय किसी व्यक्ति के लिए जो धर्म है दूसरे के लिए वही अधर्म हो सकता है क्योंकि वह भिन्न परिस्थिति में है।

स एव धर्मः सोऽधर्मस्तं तं प्रति नरं भवेत्।
पात्रकर्मविशेषेण देशकालाववेक्ष्य च॥

(महा. शान्तिपर्व- 308/16)

किसी समय धर्म ही अधर्मरूप दिखाई देता है और कभी अधर्म दिखनेवाला कर्म ही धर्म लगने लगता है, इससे विद्वानों को धर्म और अधर्म का रहस्य समझ लेना चाहिए।

अधर्म रूपो धर्मो हि कश्चिदस्ति नराधिपः।

धर्मश्चाधर्म रूपोऽस्ति तच्च ज्ञेयं विपश्चिता॥

(शान्तिपर्व-33/32)

महाभारत में मनु महाराज का यही मत है। उनके अनुसार भी एक ही क्रिया देश और काल भेद से धर्म या अधर्म हो जाती है। दान न देना, झूठ बोलना, हिंसा करना आदि सामान्य स्थितियों में अधर्म माने जानेवाले कार्य भी अवस्था या कालविशेष से धर्म माने जाते हैं।

स एव धर्मः सोऽधर्मो देश काले प्रतिष्ठितः।
अदानमनृतंहिंसा धर्मो ह्यावस्थिकः स्मृतः॥

(शान्तिपर्व- 36/11)

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि धर्म व्यवहार में सर्वदा एक रूप नहीं दिखाई पड़ता है, अवस्थाविशेष, व्यक्ति विशेष के आधार पर उसका व्यावहारिक रूप बदलता रहता है। उपर्युक्त कारणों से ही शास्त्रों ने धर्म को गुहा में निहित, अर्थात गूढ़ रहस्य वाला' जैसे-

(1) धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां (वनपर्व-313/117)

(2) सूक्ष्म गतिवाला दुर्बोध जैसे- धर्माणां गतिः सूक्ष्मा (कर्ण पर्व) और

(3) अनेक द्वारों वाला- बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मा दुरनुगा गतिः

(4) चाकू की धार से भी पतला और पर्वत से भी भारी जैसे कहा है। अणीयान् क्षुरधारायाः गरीयानपि पर्वतात्- महा. शान्तिपर्व-260/12)

(5) इसके यथार्थ स्वरूप को ढूँढ़ पाना उसी तरह कठिन है जैसे साँप का पद चिन्ह ढूँढ़ पाना-जैसे- अहिरेव हि धर्मस्य पदं दुःखं गवेषितुम् (महा. शान्तिपर्व-132/20)

(6) इसे चर्मचक्षु से नहीं मर्म-चक्षु से ही देखा-जाना जा सकता है। इसके असली रूप या रहस्य को विवेक (व्यावहारिक ज्ञान) की कसौटी पर कसकर ही देखा-पहचाना जा सकता है, अर्थात् धर्म का यह गूढ़ स्वरूप बुद्धि से ही जाना जाता है।' जैसे- यदिदं धर्मगहनं बुद्धया समनुगम्यते (महा. स्त्रीपर्व-5/1)

निष्कर्ष यह कि विवेक ही आदमी का सबसे बड़ा गुरु है, वही मार्गदर्शक है। किसी परिस्थिति विशेष या खास हालत में धर्म का कौन रूप होगा, यह विवेक के सिवा और किसी तरह से जाना नहीं जा सकता। धर्म-ग्रंथों में तो धर्म की मात्र रूप रेखा होती है, केवल सूत्र होता है, उसको विस्तार से समझने के लिए उसका भाष्य करने के लिए तो अपनी बुद्धि की ही जरूरत होती है। व्यावहारिक ज्ञान से ही आदमी मौके पर धर्म को पहचान सकता है। धर्मग्रंथों में धर्म का स्थूलरूप होता है, उसके सूक्ष्म रूप का पता तर्क-वितर्क से ही चलता है।

यह बात महाभारत में भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कही है- हे गुरुनन्दन! धर्म या सत्यपुरुषों के आचार बुद्धि से ही प्रकट होते हैं और सर्वदा विवेक के द्वारा ही जाने समझे जा सकते हैं। तुम मेरी इस बात को भलीभांति समझ लो।

जैसे-

बुद्धिसंजननो धर्म आचारश्च सतां सदा।
ज्ञेयो भवति कौरव्यं सदा तद् विद्धि मे वचः॥

(महा.वन.-142/5)

कहीं अधर्म ही धर्म जैसा लगता है, कहीं धर्म ही अधर्म जैसा मालूम पड़ता है और कहीं धर्म अपने वास्तविक स्वरूप में होता है। ऐसी स्थिति में विद्वज्जन बुद्धि से काम लेते तथा

विवेक (अनुभव जन्य व्यावहारिक ज्ञान) के आधार पर धर्म को परखते हैं, अर्थात् तर्क-वितर्क तथा अनुमान के द्वारा सही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। मतलब यह कि मौके पर धर्म का सही रूप समझने के लिए व्यावहारिक बुद्धि और तर्क-वितर्क की पग-पग पर जरूरत होती है।

जैसे-

यत्र धर्मो धर्मरूपाणि धत्ते
धर्मः कृत्स्नो दृश्यतेऽधर्मरूपः।
विभ्रद् धर्मो धर्मरूपं तथा
च विद्वांस्तं सम्प्रपश्यन्ति बुद्धया॥

(महा.- उद्योग पर्व-28/2)

वस्तुतः धर्म साध्य नहीं साधन है, मंजिल नहीं, मंजिल तक पहुँचने का रास्ता है। मंजिल या लक्ष्य है- अपनी निश्चिन्तता या मन की शान्ति और दुनिया की भलाई (आत्मनो मोक्षाय जगद् हिताय च) धर्म का लक्ष्य है संसार का पुनर्निर्माण, मनुष्य की आत्मिक उन्नति और संसार की भौतिक समृद्धि। "लोक लाहु परलोक निबाहू।" भारतीय मनीषा कहती है, जिससे संसार की उन्नति और उसका कल्याण हो वही धर्म है। अर्थात्- (यतो अभ्युदय-निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः) बुधस्मृति के अनुसार धर्म श्रेय (यश) अभ्युदय (भौतिक समृद्धि) का साधन है। (श्रेयोऽभ्युदयसाधनो धर्मः) जगद्गुरु आदि शंकराचार्य के शब्दों में जिसके सहारे संसार सदा फूलता-फलता और सुरक्षित रहकर समृद्धि करता तथा गतिशील बना रहता है, वही धर्म है।

जैसे- "जगतः स्थितिकारणं प्राणिनां साक्षाद् अभ्युदयनिःश्रेयसंहेतुर्यः स धर्मः।" संक्षेप में संसार के सभी प्राणियों की सुरक्षा, समृद्धि, कल्याण और संवर्धन तथा दुनिया की शान्ति और सुव्यवस्था लक्ष्य है धर्म का। यही कारण है कि धर्म सब जीवों का माता, पिता सुहृद, भाई, सखा एवं स्वामी सब कहा गया है।

जैसे-

धर्मः पिता च माता च धर्मोनाथः सुहृद तथा।
धर्मो भ्राता सखा चैव धर्मः स्वामी परंतपः॥

(महा. अश्वमेधिक पर्व, वैष्णवधर्म पर्व-92)

हमारे शास्त्रों तथा ऋषि-मुनियों की दृष्टि में आत्महित और लोकहित का साथ-साथ निर्वाह हो, तभी धर्म सिद्ध, यानी सार्थक होता है। समाज या समूह हित की रक्षा करते हुए निजी आत्मिक और लौकिक उन्नति का मार्ग है धर्म। इसलिए हमारे ऋषिगण आत्मोत्सर्ग, त्याग, सहिष्णुता और सहजीवन की शिक्षा देने के साथ-साथ उद्यमशील बनने की भी सीख देते हैं। आत्यंतिक-स्वार्थपरता, आत्मक्रेन्द्रिता और आत्मसुख की असीम आकांक्षा टकराव का कारण होती है और वही अव्यवस्था और अशान्ति का मूल भी है, जो धर्म के इस रहस्य और ध्येय को भूल जाते हैं, वे ही धर्म के स्वरूप को पहचान नहीं पाते।

❑❑

दक्षिण बिहार के प्राचीन एवं प्रमुख सूर्यमन्दिरों का परिचय

-श्री रामयत्न सिन्हा

सम्पूर्ण बिहार प्रदेश में यह सूर्यव्रत इतना महत्त्वपूर्ण है कि इस व्रत के दौरान बड़े-छोटे, धनी-गरीब और छूत-अछूत तक का भेद मिट जाता है। वैसे मध्यकाल से सूर्यपूजा 'लोकपर्व' के रूप में मनाये जाने लगा। किन्तु सूर्यबली व्रत की परम्परा कब से शुरू हुई, इसके बारे में बहुत खोजने पर 'देवीभागवत पुराण में' ठोस प्रमाण मिला। यह आलेख थोड़ा ज्यादा विस्तार पा गया है, इसलिए स्थानाभाव के कारण वर्णन नहीं कर पा रहा हूँ।

बस केवल बिहार के प्रमुख एवं प्राचीन सूर्य मन्दिरों के बारे में आइये जानें। बिहार ही नहीं, बल्कि देश के कोने-कोने से लाखों श्रद्धालु तथा पर्यटक बिहार के विभिन्न सूर्य मन्दिरों में भगवान भास्कर को अर्घ अर्पित करने के लिए खिंचे चले आते हैं।

(1) बड़गांव का सूर्य मन्दिर-

नालंदा जिले में एक गाँव है बड़गांव। छठ के समय बड़गांव के सूर्य मन्दिर के समीप अद्‌भुत और अनोखा दृश्य अचंभित कर देता है। श्रद्धालुओं को टुटे-फुटे खंडहर के समीप यहाँ सूर्य का एक प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर से सटे एक छोटा सा तालाब है। देखने पर इसका जल गंदा-सा मालूम पड़ता है। फिर भी इसमें स्नान करने की बाध्यता है। यह तालाब ठीक उसी तरह से है, जैसे देवघर की शिवगंगा। इस तालाब में स्नान करने की बाध्यता है। बड़गांव के मन्दिर परिसर में आश्चर्यजनक दृश्य छठ के अवसर पर सहज ही देखे जा सकते हैं। वहाँ सालों भर मन्दिर के ईद-गिर्द कलरव करता हुआ कौआ देखा जा सकता है, किन्तु छठ के चार दिनों के व्रतानुष्ठान के दौरान एक भी कौआ नजर नहीं आता और शायद यही कारण है कि आराम से 'व्रती' मन्दिर परिसर में खुले आकाश के नीचे 'पकवान' बनाते हैं।

(2) 'उमगा' का सूर्य मन्दिर-

औरंगाबाद के मदनपुर की उमगा पर्वत शृंखला पर 1400 वर्ष पूर्व एक सूर्य मन्दिर का निर्माण कराया गया था, जिसका शिल्प देव सूर्य मन्दिर से काफी हद तक मिलता है। देव से आठ मील पूरब यह मन्दिर है। प्राचीन पत्थरों एवं बिना सीमेंट के प्रयोग का बना इस मन्दिर की ऊँचाई 60 फीट है। वहाँ चैत्र एवं कार्तिक के छठ के अलावा मकर संक्रांति के दिन भी मेला लगता है। यहाँ सूर्य की एक विशाल प्रतिमा है और भगवान सूर्य सात घोड़ों पर सवार हैं। सूर्य प्रतिमा से सटे शिव और गणेश की भी प्रतिमा है। 'गया गजेटियर' के अनुसार देव सूर्य मन्दिर के निर्माण-काल के समय ही इस मन्दिर का निर्माण हुआ था। 'उमगा' के बारे में ऐसा कहा जाता है कि मुगल काल में मुस्लिम आक्रमणकारी जब यहाँ पहुँचे तो उनलोगों ने इस मन्दिर को नष्ट न करने की उनसे प्रार्थना की। उनकी विनती पर आक्रमणकारी ने मन्दिर नष्ट न करने की एक शर्त रखी। शर्त यह थी कि मन्दिर का दरवाजा यदि पश्चिम की ओर हो जाये तो वे लोग इसे ध्वस्त नहीं करेंगे। उन दिनों मन्दिर के पुजारी ने भगवान से विनती की और रातों-रात इसका फाटक अद्‌भुत रूप से दैवी शक्ति से पश्चिम की ओर हो गया।

(3) औंगारी का सूर्य मन्दिर-

नालंदा जिला के औंगारी में 'ऊर्णाक' सूर्य मन्दिर है। वहाँ का सूर्य मन्दिर अपने ढंग का अनूठा है। मेरे पूछने पर बातचीत के बाद वहाँ के लोगों ने मुझे बताया कि वहाँ अर्घ्य देने से सभी मनोकामनाएं पूरी होती है। वहाँ छठ के समय बिहार के विभिन्न भागों से लोगों के आने का ताँता लगा रहता है। सूर्य की बारह राशियाँ हैं। इन राशियों का प्रतीक देशभर में बारह (द्वादश आदित्य) सूर्य मन्दिरें है। उन बारहों में एक औंगारी का सूर्यमन्दिर भी एक है।

(4) 'देवकुंड' का सूर्य मन्दिर-

औरंगाबाद जिले के पंचरूखिया मोड़ (दाउदनगर- पंचखिया मार्ग) से 5 किलोमीट उत्तर हंसपुरा बस्ती है। वहाँ से 3 किलोमीटर पूरब देवकुण्ड का सूर्य मन्दिर है। इस सूर्य मन्दिर का दरवाजा पूर्व की ओर से है। जहानाबाद और औरंगाबाद के सीमाक्षेत्र पर ग्राम देवकुण्ड में दोनों ही छठ में मेला लगता है। खासकर यहाँ फाल्गुन में पशुमेला का दृश्य दूर से ही देखा जा सकता है। मन्दिर से सटे एक बड़ा-सा तालाब है, जिसका जल स्वच्छ एवं काफी मीठा है। इस मन्दिर में भगवान सूर्य की एक ही प्रतिमा है। कहते हैं, देव, देवकुंड और उमगा ये तीनों मन्दिर एक ही रात में बने थे।

(5) बेलाउर का सूर्य मन्दिर-

भोजपुर जिले के उदवंतनगर प्रखण्ड के दक्षिणी पूर्वी छोर पर बसा गाँव 'बेलाउर' सूर्य मन्दिर के कारण प्रसिद्ध है। यह आरा-सहार पथ पर जिला मुख्यालय से 20 किलोमीटर पर स्थित है। दस हजार की आबादी वाले इस गाँव में मन्दिर के कारण सालों भर काफी चहल-पहल रहा करती है। यहाँ सुदूर प्रदेशों से लोग मनौतियाँ मांगने आते हैं। बेलाउर के इस नयनाभिराम मन्दिर में सूर्य की भव्य मूर्ति प्रतिष्ठापित की गई है।

(6) 'मधुश्रवा' का सूर्य मन्दिर-

जहानाबाद जिले के अरवल अनुमंडल के मधुश्रवा में भी एक प्राचीन सूर्य मन्दिर है। लगभग 12 वर्ष पूर्व गया जिले के इमामगंज में टंडवा पहाड़पुर सुघई के क्रम में एक प्राचीन सूर्य मन्दिर के अवशेष मिले हैं। वहाँ सूर्य मन्दिर के अवशेष अपने समूचे गौरव तथा वैभव के साथ आज भी सूर्य उपसना के प्रमाण के रूप में समुपस्थित है। मधुश्रवा में च्यवन ऋषि का पहले आश्रम था। पौराणिक कथाओं के अनुसार सुकन्या और च्यवन ऋषि ने यहीं छठ किया था, जिससे च्यवन ऋषि का दीमक लगा शरीर 'कंचन' हो गया तथा उनके फूटे हुए नेत्र पुनः पूर्ववत् हो गए। यही कारण है कि व्रतानुष्ठान करनेवाली व्रती 'सूर्यषष्ठी व्रत' कथा अर्घ्य देने के उपरांत सुनती है, जिसमें च्यवन ऋषि व सुकन्या की चर्चा की गई है।

(7) 'देव' का सूर्य मन्दिर-

आयताकार, वर्गाकार, अर्धवृताकार, गोलाकार, त्रिभुजाकार आदि रूपों एवं आकारों में कटे पत्थरों से जोड़कर बनाया गया औरंगाबाद का यह मन्दिर अत्यंत मनमोहक एवं विजयकारी है। देश में अधिकांश सूर्य मन्दिर का दरवाजा पूरब की ओर है, लेकिन यह मन्दिर उषाकालीन सूर्य की रश्मियों का अभिषेक नहीं कर पाता; बल्कि अस्ताचलगामी सूर्य की रश्मियाँ ही मन्दिर का अभिषेक करती है। इस स्थल की प्रमाणिक कथा यह है कि प्रयाग के राजा 'पुरूरवा' ने इस मन्दिर का निर्माण कार्य प्रारंभ किया था। इसके निर्माण में श्रेष्ठ 'वास्तुकला' तथा शिल्प का प्रयोग किया गया है। सौ फीट ऊँचे इस मन्दिर के गर्भगृह में सप्तरथी सूर्य की तीन प्रस्तर प्रतिमाएँ हैं जो समीपस्थ तालाब से निकली है। एक दिन राजा परूरवा को स्वप्न आया। उसने स्वप्न के आधार पर तालाब से इन मूर्तियों को निकलावाया और मन्दिर में प्रतिष्ठित किया। राजा पुरूरवा कुष्ठ रोग से पीड़ित

था। उसने तालाब के गदे जल से स्नान किया और फिर उनका कुष्ठ रोग दूर हो गया। देवमन्दिर के जीर्णोद्धार का श्रेय ऐसे तो महाराजा 'भैरवेन्द्र प्रताप' को दिया जाता है। इस 'देवार्क' के सूर्य मन्दिर में अक्सर सैलानियों का ताँता लगा रहता है।

(8) 'उलार' का सूर्य मन्दिर-

पटना जिले के 'दुल्हिन बाजार' और पालीगंज के बीच उलार मोड़ से एक किलोमीटर की दूरी पर उलार का सूर्य मन्दिर अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं। इस मन्दिर की ऊँचाई लगभग 30 फीट है। वहाँ अर्ध्य देने का विशेष महत्व है। चैती व कार्तिकी छठ के अवसर पर वहाँ की छटा देखते ही बनती है।

(9) 'पण्डारक' का सूर्य मन्दिर-

पटना जिले के पण्डारक का पुण्यार्क सूर्य मन्दिर का प्राकृतिक सौदर्य अत्यंत ही मनोरम एवं आकर्षक है। वहाँ का अनूठा प्राकृतिक, परिवेश और प्राचीन मन्दिर का आध्यात्मिक वैभव वहाँ आनेवाले लोगों को बाँध लेता है। देश के बारह प्रमुख सूर्य मन्दिरों में इसका भी स्थान आता है।

(10)'असपुरा का सूर्य मन्दिर-

लगभग 25 फीट ऊँचा यह मन्दिर पटना जिले के विक्रम से सटे दक्षिण असपुरा गाँव में स्थित है। वहाँ के मन्दिर के चारों तरफ की हरियाली बड़ा ही मनोहारी लगता है। मन्दिर से सटा एक तालाब है जो अक्सर गंदा ही रहता है। फिर भी असपुरा का सूर्य मन्दिर अपनी भव्यता की पहचान संजोए हुए हैं।

(11)'गयादित्य' का सूर्य मन्दिर-

गया के विष्णुपद से लगभग आधा मील उत्तर, फल्गु नदी के किनारे 'गायत्री घाट' है। नीचे से ऊपर घाट में 68 सीढ़ियाँ लगी हुई है। ग्यारह सीढ़ियां चढ़ने पर गायत्री देवी का मन्दिर मिलता है। गायत्री मन्दिर से दक्षिण की ओर एक मन्दिर सूर्यनारायण की चतुर्भुज मूर्ति है, जिसे लोग 'गयादित्य' के नाम से पुकारते हैं।

(12) 'सूर्यकुंड' का सूर्य मन्दिर-

गया के विष्णुपद मन्दिर से करीब 175 गज, उत्तर, 95 गज लम्बी और 70 गज चौड़ी दीवार से घिरा हुआ सूर्यकुण्ड नामक एक सरोवर है। उसके चारों ओर नीचे तक सीढ़ियां बनी हुई है। कुण्ड का उत्तरी भाग उदीची, मध्य कनरवल और दक्षिण का दक्षिणा-मानस-तीर्थ कहा जाता है। इसी सूर्यकुण्ड में पश्चिम एक मन्दिर में सूर्यदेव की चतुर्भुज मूर्ति खड़ी है, जिसको 'दक्षिणार्क' कहते हैं।

पूजन और उपासना से प्रभावित. मानसिकता से परिपूर्ण हमारे बिहार की अनेक नदियों के तट मन्दिरों के कारण शोभायमान हैं। यूं ही बिहार में कई ऐसे सूर्य मन्दिर हैं, जो वास्तुकला एवं शिल्प की दृष्टि से सदियों से देशी-विदेशी पर्यटकों तथा सैलानियों के आकर्षक और लोक आस्था का प्रमुख केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठापित है।

बिहार का लोक पर्व छठ प्रतिवर्ष (चैत्र एवं) कार्तिक शुक्ल पक्ष के महीने में श्रद्धा और पवित्र आस्था के साथ मनाया जाता है और शायद यही कारण है कि इस अवसर पर बिहार ही नहीं बल्कि देशभर कोने-कोने से लाखों श्रद्धालु तथा पर्यटक बिहार के विभिन्न सूर्य स्थलों सूर्य मन्दिरों में भगवान भास्कर के अर्ध्य देने एवं दर्शन करने आते हैं।

रामयत्न सिन्हा
सादिकपुर, रूकनपुरा
बिहार भेटरी कॉलेज
पटना-14

❑❑

शोध आलेख

गौतम बुद्ध पर ज्योतिष विज्ञान का प्रभाव

(बुद्ध पूर्णिमा के सुअवसर पर ऐतिहासिक शोध आलेख)

-डा. भोला झा

गिद्धौर की पहाडी पर एक खण्डहर इन्द्रपी किला से 1815 ई.में प्राप्त बुद्ध की मूर्ति।

ज्योतिष शास्त्र में विशेष रूप से फलित ज्योतिष की प्राचीनता पर अक्सर यह उँगली उठायी जाती है। किन्तु यदि हम देखें तो वाल्मीकि रामायण में हमें फलित ज्योतिष की भी विभिन्न शाखाओं के सिद्धान्तों का उपयोग हुआ है। इतना ही नहीं, बौद्ध साहित्य में फलित-ज्योतिष, लक्षण-शास्त्र, प्रकृति-विज्ञान आदि का व्यापक उपयोग हुआ है। इसी महत्त्वपूर्ण विषय पर प्रकाश दे रहे हैं- ज्योतिष एवं इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् डा. भोला झा

भूमिका

बौद्ध पन्थ के प्रणेता गौतम बुद्ध (ई0पू0 563 - ई0पू0 483) भगवान् विष्णु के नौवें अवतार माने जाते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय रहा। उनका दर्शन मुख्य रूप से दु:ख तथा दु:ख निरोध के उपाय पर आधारित है। ज्योतिषशास्त्र भी प्राणी को भावी दु:ख से सावधान करता है। तथा दु:ख से मुक्ति का विधान बतलाता है। दोनों के उद्देश्य एक समान हैं। गौतम बुद्ध के जीवन पर ज्योतिष का व्यापक प्रभाव पड़ा था। आजीविक पन्थ[1] के प्रवर्त्तक मक्खलिगोशाल (ई.पू. छठी शताब्दी) की तरह गौतम बुद्ध भी महापुरुषों के लिए शरीर के अंग की विशेषताओं के समर्थक थे। अत: आजीविक-पन्थ की तरह बौद्ध पन्थ भी कर्मवाद के साथ-साथ भाग्यवाद का समर्थन करता है। V. A. Smith (1848 से 1926) ने ठीक ही बौद्ध पन्थ को हिन्दू धर्म का सुधारवादी आंदोलन कहा है। इससे स्पष्ट है कि बौद्ध पन्थ भी सनातन धर्म की एक शाखा है।

ज्योतिषी की भविष्यवाणी:-

भारतीय परम्पराओं का एक यह भी अंग है कि परिवार में जब कभी कोई बच्चा जन्म लेता है तो इसके माता-पिता अथवा परिवार के सदस्य

निकटतम विख्यात् ज्योतिषी से उसकी जन्म कुण्डली बनवाकर यह जानना चाहता है कि उस नवजात का भविष्य कैसा होगा एवं ग्रहों-नक्षत्रों का उसके ऊपर कैसा स्वभाव अथवा प्रभाव है। वराह मिहिर (505 ई.-587 ई.) बृहज्जातक में कहते हैं कि किस ग्रह की दशा या प्रभाव जातक पर है यह उसके चेहरा को देखते ही ज्ञात हो जाता है।[2] बौद्ध ग्रन्थ मज्झिम निकाय[3] (ई.पू. तीसरी सदी के लगभग) तथा ललित-विस्तर[4] (लगभग चौथी सदी) से पता चलता है कि सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) के जन्मोपरान्त उसके पिता ने भी भारतीय परम्पराओं के अनुकूल ज्योतिषी को बुलवाकर उनकी सामान्य जन्म कुण्डली बनवायी थी तथा ज्योतिषी ने सिद्धार्थ से सम्बन्धित भविष्यवाणी करते हुए बतलाया था कि यह लड़का यदि गार्हस्थ्य में प्रवेश करता है तो बड़ा सम्राट बनेगा और यदि दूसरी ओर मुड़ता है तो एक ज्ञान-चक्षु-सम्पन्न संन्यासी बनेगा। सिद्धार्थ के पिता राजा थे, फलतः उनके मन में यही अभिलाषा बारम्बार उदित होती रही कि उनका पुत्र एक बड़ा सम्राट बने। इन्ही अभिलषित योजना के फलस्वरूप सिद्धार्थ के पिता ने उन्हें गार्हस्थ्य में बने रहने के लिये यत्न करना प्रारम्भ कर दिया। इसके अतिरिक्त बौद्ध ग्रन्थ त्रिपिटक (लगभग ई0पू0 तीसरी सदी) से सन्दर्भित यह भी एक तथ्य है कि कपिलवस्तु एवं मल्ल गणतंत्र के बीच रोहिणी नदी प्रवाहित होती थी और दोनों गणों के बीच उक्त नदी के जल के लिये विवाद उत्पन्न हो गया। तभी कपिलवस्तु की गणपरिषद ने यह निर्णय थोपा कि कपिलवस्तु मल्लों के विरूद्ध युद्ध करेगा और सिद्धार्थ सेना के नायक बन युद्ध का संचालन करेगें। परिषद् के इस निर्णय के प्रतिकूल सिद्धार्थ ने यह बताया कि शान्तिवार्ता से संघर्ष विराम हो युद्ध से नहीं। डी. डी. कोशाम्बी के अनुसार (1907-1966) अपने ऊपर दबाब पड़ते देख सिद्धार्थ ने गृह-परित्याग कर दिया।[5] दूसरी और जातक ग्रन्थ यह बतलाता है कि एक दिन सिद्धार्थ ने एक वृद्ध, श्मशान जाते हुए एक शव, एक लाचार गृहस्थ तथा एक मुस्कुराते हुए संन्यासी, को देख जीवन की निस्सारता का सुदृढ़ परिज्ञान हुआ। इस विराग से सम्प्रेरित होकर सिद्धार्थ ने मात्र 29 वर्ष की आयु में गार्हस्थ्य का परित्याग करते हुये गृह-त्याग कर दिया।[6] वे संन्यासी होकर निकल पड़े। ज्योतिषी की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।

ज्योतिषीय ग्रह के नाम पर सिद्धार्थ के पुत्र का नामकरण:-

ऐतिहासिक तर्क का हवाला देते हुए यह भी कहा जाता है कि सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) के जन्म के लगभग सौ वर्ष पूर्व की एक रचना है- छान्दोग्य उपनिषद्[7] (लगभग ई.पू. सातवीं सदी) जिसमें बताया गया है कि राहु के मुख में चन्द्रमा प्रविष्ट होकर फिरता रहता है। सिद्धार्थ गौतम के जन्म के पूर्व ही यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि राहु ग्रह चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों को क्रम-क्रम से ग्रस लेता है, यह शास्त्रीय विधान आलोकित हो चुका था। और इसमें अखिल भारतीय मान्यता का संकेत प्राप्त हो चुका था। 'राहु' शब्द के कतिपय अर्थ भी किये जा चुके हैं, यथा- गरसना, पकड़ना, बंधक बनाना आदि भी होते है।[8] जब सिद्धार्थ गौतम को विवाहोपरान्त पुत्र होता है और यह सूचना उनके पिता शुद्धोधन को मिली तो उन्होने यह खबर अपने पुत्र सिद्धार्थ को भिजवा दी। सिद्धार्थ ने यह सूचना पाकर प्रसन्नता व्यक्त नहीं की, बल्कि ऐसा महसूस किया कि वह खुद बंधन में आबद्ध हो गये और प्रतिक्रिया में उन्होनें राहु शब्द का उच्चारण किया। वह पुत्र उनके लिए 'राहु' अर्थात् बन्धन में आबद्ध करने वाला तत्त्व प्रतीत हुए, संवादवाहक ने भी सारी बातें शुद्धोधन को बतला दी। चिन्तित शुद्धोधन ने ज्योतिषी को बुलवाकर बच्चे के नाम में संशोधन कराया। सिद्धार्थ ने अपने पुत्र को राहु कहा था, पर ज्योतिषी उसमें ल जोड़कर उसे 'राहुल' बना दिया, जो शुद्धोदन को अच्छा प्रतीत हुआ और यही नाम चरितार्थ भी हुए।[9] फलतः यह संकेत स्पष्ट रूप से

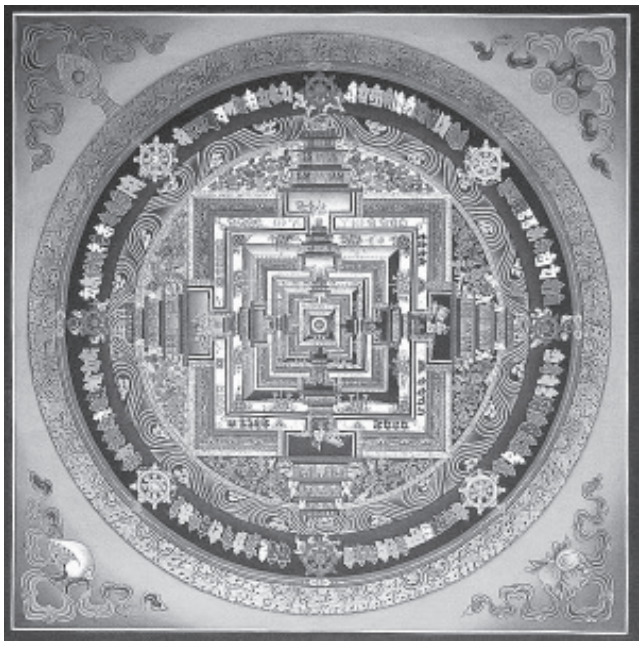

बौद्धधर्म का कालचक्र यन्त्र

मिल जाता है और ज्योतिषी के कथन को प्रामाणिक मानकर माना जा सकता है कि राहु और केतु इन दोनों छाया ग्रहों को ई. पू. छठी सदी में मान्यता मिल चुकी थी। अत: राहु और केतु पृथ्वी के साथ ही ग्रहण कारक माने जाने लगे। बुद्ध के जन्म के पहले ही इन दोनों छायाग्रहों को भारतीय स्तर पर मान्यता मिल चुकी थी और आज के आधुनिक युग में भी उक्त मान्यता चरितार्थ होती दिख रही है।

गौतम बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण और ज्योतिष:-

प्रसिद्ध बौद्ध-ग्रन्थ त्रिपिटक एवं 'ललित बिस्तर' से यह तथ्य ज्ञात होता है कि सिद्धार्थ ने अपनी निशाकाल में अपनी सोयी हुई पत्नी एवं नवजात पुत्र राहुल को छोड़कर घर से निकल पड़े एवं आगे जाकर उन्होने अपने सिर के बाल को काट लिया; साथ ही चीवर धारण कर हाथ में भिक्षा-पात्र ग्रहण कर आगे चलते बने। अब वे संन्यासी के वेश में आकर संन्यासी चरितार्थ हुये। जब उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हो गयी तो वे ज्ञान-सम्पन्न अपने अभिभाषण से जन-गण में आलोक भरते रहे। यदि बौद्ध ग्रन्थ की बात मानी जाय तो कहना होगा कि यह वस्तुत: एक ऐतिहासिक घटना है और इसे बौद्ध पन्थ की भाषा में महाभिनिष्क्रमण कहा जाता है। बौद्ध पन्थ से जुड़ी इस घटना की एक सम्मोहक स्वर्णमूर्ति एक देश की सरकार ने बनवायी है जिसमें दर्शाया गया है कि एक बार सम्मोहित होकर सिद्धार्थ घर वापस होने हेतु मुड़ चुके थे, पर सम्भलकर पुन: संन्यास मार्ग पर चल पड़े।

महाभिनिष्क्रमण की यह घटना आषाढ़ी पूर्णिमा की रात में घटी थी। ज्योतिषीय आधार से माना जाता है कि उस रात पूर्वाषाढ़ अथवा उत्तराषाढ़ दोनों में से कोई एक नक्षत्र था। यह बात भी बौद्ध-ग्रन्थ से ज्ञापित है। जहाँ तक ज्योतिषीय विधान की बात है, अथर्ववेद में उत्तराषाढ़ नक्षत्र को बल प्रदाता एवं इच्छित वस्तु दिलाने वाला बताया गया है, इतना ही नहीं, यह नक्षत्र बुद्धि प्रदाता एवं सफलता प्राप्त कर भोग-विलास करने वाला माना गया है। यह नक्षत्र ध्वज-पताका, शस्त्र एवं मुकुट निर्माण के लिए भी प्रशस्त[10] है। सिद्धार्थ के इस महाभिनिष्क्रमण के पीछे ज्योतिषीय सन्दर्भ सम्मिलित है, इसमें कोई संदेह नहीं।

गौतम बुद्ध का पूरब दिशा में मुँह करके भोजन करना:-

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सभी दिशाओं में पूरब दिशा का अधिक महत्त्व है। इसी दिशा में भगवान् सूर्य का उदय होता है। भगवान् सूर्य ग्रहपति हैं तथा नवग्रह से ही ज्योतिष का उद्‌भव हुआ है।

बौद्ध ग्रन्थ मज्झिम निकाय[11] से पता चलता है कि गया के उरूबेला नामक स्थान में सुजाता नामक बाला ने सिद्धार्थ गौतम को खीर खाने के लिए दी थी। उस भोज्य पदार्थ को सिद्धार्थ ने पूरब दिशा में मुँह करके बैठकर ग्रहण किया था। उसके पश्चात् ही ध्यान लगाने पर उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। इससे स्पष्ट है कि ज्योतिष शास्त्र तथा धर्मशास्त्र द्वारा पूरब दिशा के निर्धारित महत्त्व को गौतम बुद्ध ने भी स्वीकार किया था।

गौतम बुद्ध पर सामुद्रिक विद्या (ज्योतिष) का प्रभाव:-

अंगविद्या या हस्तरेखा को ज्योतिष सिद्धान्तानुसार सामुद्रिक शास्त्र की संज्ञा दी गयी है, जिसमें अंग एवं हस्तरेखाओं के आधार पर पात्र की गणना की जाती है। यह ज्योतिष में संहिता-खण्ड के अन्तर्गत समाविष्ट है। यह निश्चित रूप से कहा जाय कि गौतम बुद्ध पर इसका समुचित प्रभाव पड़ा। अंग की बनाबट के आधार पर भी सिद्धार्थ के शारीरिक आकार का सैद्धान्तिक परीक्षण किया गया जिसके परिणाम अंकित मिलते हैं। प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ 'दीघनिकाय' से इन बातों की पुष्टि होती है कि महापुरुष में 32 (बत्तीस) शारीरिक लक्षण विद्यमान होते है।

सात रत्न:-

बुद्ध श्रावस्ती में अनाथ पिण्डक के जेतवन में ठहरे थे, जहाँ उन्होने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुये कहा था कि 'महापुरुषों की दो ही गतियाँ होती हैं, तीसरी नहीं। यदि उन लक्षणों से संयुक्त व्यक्ति घर में आता है तो वह धार्मिक प्रवृत्ति का होगा। आगे वह धर्म रक्षक रहते हुये चारों ओर विजय प्राप्त करनेवाला भी होता है। वह शान्ति की स्थापना भी करता है। वह सात रत्नों से संयुक्त चक्रवर्त्ती राजा होता है। उसके सात रत्नों के नाम हैं- चक्ररत्न, हस्तीरत्न, अश्वरत्न, मणिरत्न, स्त्रीरत्न, गृहपतिरत्न एवं सातवाँ परिणायकरत्न। यदि वह गृह का परित्याग करता है तो विश्व में अपनी ध्वजा को फहराकर महाप्रतापी धर्म संरक्षक हो जाता है। वह दुनियाबी आवरणों को विनष्ट कर शुद्ध तात्त्विक धर्मचारी बन जाता है।[12]

बौद्धग्रन्थ दीघनिकाय से पता चलता है कि बुद्ध के अनुसार महापुरुषों के 32 (बत्तीस) लक्षण अधोलिखित हैं[13]:-

1. वह सुप्रतिष्ठित पाद होता है।
2. उसके पैर के तलवे सर्वाकार परिपूर्ण नाभिनेमि मुक्त सहस्त्र अरोंवाला चक्र होता है।
3. उसके आयत-पाष्णि होती है।
4. वह दीघइगुल होता है।
5. उसके हाथ-पाँव कोमल और सुन्दर होते है।
6. उसके हाथ-पैर जालके समान होते है।
7. वह उस्सह-पाद होता है।
8. वह एणीजंघा होता है।
9. वह अजानुबाहु होता है।
10. वह कोषाच्छादित बस्ति गुह होता है।
11. उसके वर्ण स्वर्ण के समान होता है।
12. वह कोमल त्वचा वाला होता है, जिससे शरीर पर मैल-धूल नहीं चमकती।

13. उसके एक रोम कूप में एक ही रोम होता है
14. उसके रोम उर्ध्वाधर होते हैं।
15. उसका शरीर बाह्य-ऋजु होता है।
16. वह सप्तउत्सद होता है।
17. वह सिंह-पूर्वार्द्ध काय होता है।
18. उसके दोनों कन्धों के बीच का भाग भरा रहता है।
19. उसके शरीर का परिमण्डल न्यग्रोध वृक्ष के समान तथा लम्बाई-चौड़ाई में समानुपात होता है।
20. उसके स्कन्ध समवर्त होते हैं।
21. वह सुन्दर शिराओं वाला होता है।
22. उसकी हनु सिंह के समान होता है।
23. उसके मुख में 40 (चालीस) दाँत होते है।
24. वह समदन्त होता है।
25. उसके दाँतो के बीच में विवर नहीं होता है।
26. वह श्वेत दाढ़ वाला होता है।
27. उसकी जीभ लम्बी होती है।
28. उसका स्वर करवीक पक्षी के समान नैसर्गिक होता है।
29. वह अभिनील नेत्र वाला होता है।
30. उसकी पलकें गाय के समान उर्णा होती है।
31. उसकी भौंहो के बीच में श्वेत कोमल कपास के समान होती है।
32. उसका सिर राजाओं की पगड़ी के समान हुआ करता है।

उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि सामुद्रिक शास्त्र से भी होती है।[14]

पाटलिपुत्र (पाटलिग्राम) के लिए बुद्ध की भविष्यवाणी:-

वृष्टि, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, सूखा, अकाल, अग्नि-प्रकोप आदि संबंधित भविष्यवाणी प्राचीन काल में ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत आते थे। आज भी पंचाङ्ग के वार्षिक फल में इसकी विस्तार से चर्चा की जाती है।

बौद्ध साहित्य के अनुसार एक बार गौतम बुद्ध ने पाटलिपुत्र (पाटलिग्राम) की भरी सभा में भविष्यवाणी की थी कि इस नगर को आग पानी और आपसी कलह के खतरे का भय बराबर बना रहेगा।[15] इस प्रकार तत्कालीन ज्योतिष के कार्य क्षेत्र वाले विषय पर गौतम बुद्ध की भविष्यवाणी यह सिद्ध करता है कि उन पर ज्योतिष का व्यापक प्रभाव पड़ चुका था।

गौतम बुद्ध के द्वारा दिशाओं के महत्त्व का निरूपण-

बौद्ध ग्रन्थ दीघनिकाय[16] से पता चलता है कि एकबार गौतम बुद्ध ने मगध की प्रथम राजधानी राजगृह में सिगाल नामक गृहस्थ के तालाब में स्नानकर सभी दिशाओं के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए सभी दिशाओं को नमन करने योग्य बताया।

ज्योतिष शास्त्र में भी प्रत्येक दिशा के लिए अलग-अलग देवता की परिकल्पना कर सभी दिशाओं के नमस्कार का विधान है। गौतम बुद्ध द्वारा आर्य धर्म के आधार पर व्यवहारिक पक्ष पर बल देते हुए दिशाओं के नमस्कार का फल बतलाया है अत: यह कहा जा सकता है कि दिशा नमस्कार के द्वारा गौतम बुद्ध ने भी ज्योतिषीय पक्ष का समर्थन किया है।

गौतम बुद्ध द्वारा अम्बपाली (आम्रपाली) गणिका को बौद्ध पन्थ में दीक्षित किया जाना:-

प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्र गणिका (राजनर्तकी) को हेय (निम्न) दृष्टि से देखता है। इस सन्दर्भ में आपस्तम्ब धर्म सूत्र द्रष्टव्य है। पुराण ज्योतिष संबन्धित सामग्री का भण्डार

है। ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से गणिका का दर्शन यात्रा के लिए शुभ है।[17] बौद्ध ग्रन्थ से पता चलता है कि गौतम बुद्ध ने वैशाली की प्रसिद्ध गणिका अम्बपाली का आतिथ्य स्वीकार कर उसके यहाँ भोजन किया था। यह भी उल्लेख मिलता है कि बुद्ध ने उसे बौद्ध पन्थ में दीक्षित भी किया था और अम्बपाली को अर्हता की प्राप्ति हुई थी।[18] इससे सिद्ध होता है कि ज्योतिषीय दृष्टि से पवित्र गणिका को दीक्षित कर गौतम बुद्ध ने नारी संबन्धित ज्योतिष की अवधारणा का समर्थन किया था।

गौतम बुद्ध और काल चक्र पूजा- (Kalachakra yana)-

एक दन्तकथा के अनुसार कालचक्र पूजा के उद्भव का श्रेय गौतम बुद्ध को जाता है। ऐसा कहा जाता है कि गौतम बुद्ध को ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् कालचक्र का परिज्ञान हुआ था[19] जिसे उन्होंने सामूहिक स्वरूप दिया। कालचक्र के तहत बताया गया है कि यह साधना, मुहूर्त, नक्षत्र, तिथि आदि का योग होता है।[20] निष्पन्न योगावली बौद्धग्रन्थ से पता चलता है कि गौतम बुद्ध पर ज्योतिष के इसी प्रभाव को देखते हुए बाद के बौद्धों ने नवग्रह को बौद्ध पन्थ के देवताओं में सम्मिलित कर लिया था[21] काल चक्र पूजा का पूर्ण विकास 966 ई. में महिपाल के काल में हुआ। इस पूजा के तहत सुख, समृद्धि और शांति की कामना की जाती है। कालचक्र ज्योतिष का शब्द है। उससे बौद्धों के बीच ज्योतिष की लोकप्रियता का पता चलता है।

निष्कर्ष-

गौतम बुद्ध और ज्योतिष पर सम्यक रूप से विचार करने पर एक आधार बनता है कि गौतम बुद्ध पर भी ज्योतिष का प्रभाव पड़ा था। उतराषाढ़ नक्षत्र में गृह त्याग करना तथा पुत्र के लिए राहु जैसे ज्योतिषीय ग्रह का सम्बोधन करना यह बतलाता है कि गौतम बुद्ध पर ज्योतिष का व्यापक प्रभाव था। गौतम बुद्ध के द्वारा यात्रा के लिए शुभ नक्षत्रों का चयन उनके ऊपर ज्योतिषीय प्रभाव को दर्शाता है। स्वयं बुद्ध ने महापुरुषों के अंगों का निरूपण करते हुए 32 बत्तीस प्रकार के लक्षणों को जो निर्दिष्ट किया है उसका संबन्ध ज्योतिष के समुद्री शास्त्र से जुड़ जाता है। समुद्री शास्त्र में भी तो हस्त रेखा एवं अंगों की बनावट पर विचार करते हुए भविष्यवाणी करने की कला निरूपित है और सामुद्रिक शास्त्र भी ज्योतिष का एक अंग है। जब स्वयं गौतम बुद्ध ने अंगों को आधार मानकर महापुरुष होने की परिकल्पना की है तो क्यो नहीं कहा जाय कि ज्योतिष शास्त्र का एक अंग सामुद्रिक शास्त्र को बुद्ध ने भी अंगीकार कर लिया था, जो आगे फलता-फूलता रहा। काल-चक्र ज्योतिष का शब्द है तथा यह शब्द ज्योतिष के केन्द्र में है। गौतम बुद्ध को ज्ञानप्राप्ति के समय काल-चक्र का परिज्ञान होना यह बतलाता है कि बुद्ध भी ज्योतिष से प्रभावित थे। इससे यह भी संपुष्ट हुआ कि बौद्धपन्थ सनातन धर्म का अभिन्न अंग है।

सन्दर्भ:-

1. History and Doctrines of Ajivikas-A.L. Basam, Chapter XII, London , Publication Year- 1951
2. बृहज्जातक- 8/214/1
3. मज्झिम निकाय- 1.163
4. ललित विस्तर- 14
5. D.D. Kosambi: Life of Budha, PP- 67-68
6. महापरिनिब्बान सुत्त-221

7. छान्दोग्य उपनिषद- 8/13/1
8. डॉ. भोला झा, नवग्रह, नवग्रह प्रकीर्णक, पृ0- 294
9. वही
10. कल्याण- ज्योतिषीय तत्वांक अभयजी शास्त्री, नक्षत्र का विवेचन, पृ0- 262
11. मज्झिम निकाय, अरिय परिय सुतन्त- 1-3-6
12. दीघ निकाय, लक्षण सुत- 7.1.3
13. वही
11. सामुद्रिक शास्त्र, 2/88
15. रिपोर्ट ऑफ ए. स्पूनर, एक्सवेशन ऑफ पाटलिपुत्र, जे.आर.ए.एस.-1915
16. मत्स्य पुराण- अध्याय- 243
17. दीघ निकाय, सिगालोवाद सुत्त- 8/1/31
18. वैशाली अभिनंदन ग्रन्थ, अम्बपाली, लेखक- डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ- 236
19. Nalanda Vol- 1 BN Mishra P- 374
20. डॉ0 भोला झा, भारतीय ज्योतिष का उदभव और विकास- बौद्ध पन्थ और ज्योतिष- भाग 2 (अप्रकाशित)
21. वही, समुद्री विद्या और ज्योतिष, भाग- 6 (अप्रकाशित)

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची (मूल ग्रन्थ):-

1. छान्दोग्य उपनिषद, गीता प्रेस गोरखपुर पिन कोड- 273005, यू0 पी0, प्रकाशन वर्ष 1921 ई0
2. दीघ निकाय पालि (उ0 पाथिक वग्गो), प्रधान संशोधक, भिक्खु जगदीश कस्सप, नव नालंदा महाविहार नालंदा (803101) बिहार, पुनर्मुद्रण-1981 ई0
3. मज्झिम निकाय-सम्पादक, राहुल सांकश्त्यायन,, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, (221007) प्रकाशन वर्ष- 1936 ई0
4. त्रिपिटक, संपादक- जगदीश कस्सप, नव नालंदा महाविहार, नालंदा (803101) बिहार
5. ललित विस्तर, सम्पादक-डॉ0 राजेन्द्र लाल मित्र, प्रकाशक- जे0 उब्ल्यु0 थामस, बेपटिस्ट मिशन प्रेस, 57 पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता (700001)
6. जातक कथा, लेखक- बुद्ध घोष, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी (221001) (यू0पी0) प्रकाशन वर्ष- 1951 ई0, प्रकाशन वर्ष- 1887 ई0
7. बुद्धचरित, लेखक-अश्वघोष, सम्पादक, रामचन्द्र दास शास्त्री, भाग दो, प्रकाशन वर्ष- 1962 ई0, सारनाथ, वाराणसी (212011)
8. बृहज्जातक, लेखक- वराह मिहिर, व्याख्याकार, पंडित केदार दत्त जोशी
   मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, नयी दिल्ली (110001), संस्करण 1985 ई0
9. मत्स्य पुराण, गीता प्रेस गोरखपुर , पूनर्मुद्रण- 1987 ई0
10. महापरिनिब्बान सुत्त, सम्पादक- अनुवादक, जगदीश कश्यप, पाली त्रिपिटक सीरीज, लंदन।
11. सामुद्रिक शास्त्र, लेखक- समुद्रमुनि, चौखम्बा संस्कृत, सीरीज, वाराणसी (212011)

सहायक ग्रन्थ सूची (हिन्दी भाषा के ग्रन्थ):-

1. गौतम बुद्ध, डी0 डी0 कोशाम्बी, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली (110001), प्रकाशन वर्ष- 1956 ई0
2. नवग्रह, लेखक-डॉ0 भोला झा, तारा प्रकाशन, ग्रा0- शेखपुरा, पो0- कोनैला, जिला- समस्तीपुर, पिन कोड- 848114 (बिहार), प्रकाशन वर्ष 2001 ई0
3. डॉ भोला झा, भारतीय ज्योतिष का उद्भव और विकास, डॉ भोला झा रिसर्च फाउन्डेशन (अप्रकाशित)
4. कल्याण (ज्योतिष तत्वाड.क जनवरी 2014 ई0), सम्पादक-राधेश्याम खेमका, गीता प्रेस, गोरखपुर (273005) यू0 पी0
5. वैशाली अभिनंदन ग्रन्थ, संपादक, योगेन्द्र मिश्र प्राकश्त जैन एवं अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, प्रकाशन वर्ष- 1985 ई0

अंग्रजी भाषा के ग्रन्थ

1. A. L. Basam, History and Doctrines of Ajivikas, London, Publication Year- 1951
2. BN Mishra,Nalanda, Vol.- 1, BR Publishing Corporalion , New Delhi (110001)
3. D. D. Kosambi: Life of Budha, Bombay Publication Year- 1955
4. Dr. sponer's Report The Excavation of Patliputra, J.R.A.S.-1915

सम्पर्क सूत्र:-

डॉ0 भोला झा

अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, स्नातकोत्तर अध्ययन केन्द्र (दूरस्थ शिक्षा)

एम0 एन0 डी0 डिग्री कॉलेज, चन्दौली, उजियारपुर, समस्तीपुर (848132) बिहार, एल0एन0एम0यू0 दरंभगा

मो0-9525821930

❑❑

मिथिला के सन्त : लक्ष्मीनाथ गोस्वामी

श्री मगनदेव नारायण सिंह
वरिष्ठ पत्रकार

प्रात:स्मरणीय मिथिला के सन्त लक्ष्मीनाथ गोस्वामी सम्पूर्ण मिथिला में ही नहीं, बल्कि नेपाल तक में पूजनीय थे। इनके बारे में मिथिला के अनेक वृद्धजनों से कई दन्तकथाएँ सुनी थी। सन् 1984 में इंदिराजी की हत्या के बाद होनेवाले लोकसभा चुनाव से पूर्व एक सर्वेक्षण के तहत मुझे सहरसा और मधेपुरा जिला में 'आर्यावर्त दैनिक' (तब मैं आर्यावर्त में प्रधान संवाददाता था) की तरफ से भेजा गया था। भ्रमण करते हुए मैं वनगांव पहुंचा। वहाँ सड़क के किनारे एक कुटी देखी, जिसमें संगमरमर की प्रतिमा स्थापित थी। कुटी पर लिखा था- 'लक्ष्मीनाथ गोस्वामी की समाधि।' देखकर मेरी जिज्ञासा कुलांचें मारने लगी तो लोगों से बातें की तो कई जानकारियाँ मिली। किसी ने कहा - महान् सन्त थे। किसी ने कहा - पहुँचे हुए तान्त्रिक साधक थे; तो किसी ने कहा - कृष्णभक्त थे और कृष्णभक्ति के भजन गाते थे और लिखते भी थे; अर्थात् भजनों की रचना भी करते थे।

फिर, मैंने एक दिन दरभंगा जिले के ठेंगहा गांव के निकट फैटकी में भी उनकी कुटी देखी। जब मैंने लोगों से कहा कि इनकी कुटिया तो मैंने वनगांव

सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाँई बिहार का वैष्णव परम्परा के प्रख्यात सन्त रहे हैं। उत्तर बिहार का मिथिला सांस्कृतिक क्षेत्र उनका जन्मस्थल एवं कार्यस्थल दोनों रहा है। उनके निर्गुण उपासना के पद भी पर्याप्त प्रसिद्ध हैं, किन्तु रामभक्ति परम्परा के पद भी उनके कम नहीं हैं। उन्होंने श्रीराम के जन्म एवं विवाह के अवसर के अनेक गीतों की रचना है, जो आज मिथिला क्षेत्र में लोककण्ठ में रचे-बसे हैं। प्रस्तुत आलेख में लेखक ने परमहंस लक्ष्मीनाथ गोसांई रचित रामजन्म गीतों का संकलन किया है।

(सहरसा) में देखा है तो वरिष्ठजनों ने बताया कि उनकी कुटिया इन दो जगहों पर ही नहीं, बल्कि परसरमा, फैटिकी, लखनौर और शुक्रपुरा गाँव में भी निर्मित है।

सन्त शिरोमणि लक्ष्मीनाथ गोसाईं परमहंसजी का जन्म सुपौल जिले के परसरमा ग्राम में सन् 1793ई. में पण्डित बच्चा झा के घर में हुआ था। वे कुजिलवार दिगौन मूल और कात्यायन गोत्र के ब्राह्मण थे। उनका बचपन गो-सेवा में ही बीता। किन्तु, यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् वे ज्योतिष विद्या के अध्ययन के लिए महिनाथपुर के प्रकाण्ड ज्योतिष पण्डित रत्ते झा के पास चले गये। पण्डित रत्ते झा ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् ही नहीं, बल्कि तन्त्र शास्त्र के भी सिद्धपुरुष थे। वहीं उनकी रुचि तन्त्रशास्त्र में भी हुई। गुरु का अमोघ आर्शीवाद प्राप्त कर वे स्वग्राम लौट गये।

फैटकी कुटी पर सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाईं द्वारा स्थापित राधा-कृष्ण का मन्दिर

लौटकर वे खोये-खोये से रहने लगे। माता-पिता ने उनको हमेशा चिन्तित देखकर उन्हें विवाह-बन्धन में बांध दिया। परन्तु, गृहस्थ जीवन उन्हें रास नहीं आया और वे जंगल की ओर योग-साधना की खोज में निकल पड़े। सौभाग्य से उन्हें जंगल में योगीराज लम्बनाथजी से मुलाकात हो गयी और वे उन्हें अपना गुरु मानकर उनसे योग की शिक्षा प्राप्त करने लगे और फिर एक दिन प्रभु कृपा से सिद्ध योगी बन गये।

भगवान् कृष्ण की भक्ति में इन्होंने कई रचनाएँ की हैं जो अधिकांश लोग जानते हैं। किन्तु, भगवान राम की स्तुति में जो उन्होंने रचनाएँ की है, उसकी जानकारी शायद कुछ ही लोग को है। यहाँ मैं सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाईंजी द्वारा रचित चन्द भजनों को उद्धृत कर रहा हूँ। आशा है सुधीजन पसन्द करेंगे।

भगवान् के जन्म पर 'चैती राग' में -

(1)

दशरथजी के धाम अवध बधाई बाजे।
जनमे जगतहित रघुवर श्रीराम।। ध्रुव।।
सुनि मुनि धज्ञय आये वाचक गुणि ग्राम हो रामा।।
जोहि जो मनोरथ रहे तेहि पूरे सो काम हो रामा।।
सुर नर नागलोक हरखित तिहु ठाम हो रामा।।
'लछन' आनन्द मन दुःख दुर्जन धाम हो रामा।।

(2)

बाजत बधाई आज राजा दशरथ राज हो रामा।। ध्रुव।।
नगर महल द्वार घर घर सजे साज हो रामा।। अन्तरा।।
बनि बनि नर नारी आये नृप समाज हो रामा।।
कोउ पाये हीरा जोड़ा कोउ घोड़ा गजराज हो रामा।।
नृपति दुआरे नाचे, सुर वधु तजि लाज को रामा।।
कौशल्या के सुत लखि पूरित 'लक्षन' काज हो रामा।।

(3)

कौशल्या जी खेलावे राम खेले अंगना।। ध्रुव।।
कर पद लोचन कमल मद मोचन, सरजित रुचि वदना।।अंतरा।।
मखमल की टोपी सिर राजति, केहरि के नखना।
परस श्याम तनपीत झिंगुलिया, झलकत उर गहना।।
मोर कबूतर हंस चकेवा, सोने के सुगना।
हाथी घोड़ा बैल ऊंट रथ, और बने खिलौना।।
सोने के सेज, सोने के मचिया, सोने बने पलना।
नाचत बजत हंसत हंसावत, दशरथ के ललना।।
भरत शत्रुघन लछुमन आये, भूपति के सदना।
'लक्ष्मीपति' तेहुलोक अनन्दित, लखि लज्जित मदना।।

(4)

कौशल्या की गोदी में, राम करे रोदना।। ध्रुव।।
मुखहुं न बोलत, अंगुल से बतावत, चांद मांगत खेलना।। अंतरा।।
पिये नहि दूध दोऊ कर मीजत, सुसुकि सजल नयना।
कसमसात खसि पड़े, पुहुमि पर भूमि करे सजना।।
लेटत पोटत करि लरिकाई छेकत दोउ चरणा।
उठत चलत पुनि करत लटारम, धूरि धूसर वदना।।
हीरा मोती लाल जवाहर सोने के सोहना।
लेत नहीं कछु दूरि दुरावत, तोड़ि तोड़ि गहना।।
दशरथ जी को खबरि भये तब, आये चुमे वदना।
'लक्ष्मीपति' दर्पण मे चन्दा, देखि भये मगना।।

❑❑

बलि विमर्श

(भाग 1)

-आचार्य किशोर कुणाल

बलि की हिंसा को लेकर कम से कम २५०० वर्षों से विमर्श चल रहा है। मानव ज्यों-ज्यों सामाजिक होता गया है, हिसा को परित्याग करने की उनकी प्रवृत्ति जगती गयी है। योगसूत्रकार ने भी हिंसा के परित्याग कर देने से वैरभाव मिट जाने के कारण भय से मुक्ति की बात की है और कहा है कि भय मिट जाने के कारण मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। रामायण, महाभारत के साथ अन्य पुराणों में भी मांसबलि की निन्दा की गयी है तथा देवता-पितरों को अर्पित करने के लिए अनेक सात्त्विक वस्तुओं की सूची दी गयी है। उन पदार्थों को भोग लगाने के लिए प्रेरित किया गया है। इसका अर्थ है कि हमारी संस्कृति ज्यों ज्यों विकसित होती गयी है, मांस के स्थान पर सात्त्विक पदार्थों की प्रवृत्ति बढी है। इस विषय पर हम लगातार आलेखों को प्रकाशित कर रहे हैं।

बलि-शब्द का यथार्थ

बलि शब्द बल् धातु में इन् प्रत्यय से व्युत्पन्न होता है, जिसका सामान्य अर्थ आहुति, भेंट, चढ़ावा होता है। इसे बलिवैश्वदेव यज्ञ या भूतयज्ञ भी कहते हैं,जो दैनिक पंच-महायज्ञों में से एक महत्त्वपूर्ण यज्ञ है। इसका विस्तृत विधान मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति एवं अन्य स्मृति-ग्रन्थों में है। मनुस्मृति के तृतीय अध्याय में ८१ वें श्लोक से ९४ वें श्लोक तक इसका विधान है। मनु महाराज कहते हैं कि स्वाध्याय से ऋषियों की; होम से देवताओं की श्राद्ध से पितरों की, अन्न से मनुष्यों की तथा बलि से भूतों की पूजा की जाती है।

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितॄन् श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा।।८१।।

पितरों को प्रसन्न करने के लिए गृहस्थ को अन्न, जल, दूध, कन्दमूल और फल से प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिए।

कुर्यादहश्च श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्।।८२।।

तदनन्तर मनु देवताओं की आहुति की विधि बतलाकर बलि का विधान बतलाते हैं–

एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम्।
इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत्।।८७।।
उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद् भद्रकाल्यै च पादतः।
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत्।।८९।।

इस श्लोक में बलि का जो विधान है, उसके अनुसार घर के पाद यानी नैर्ऋत्य कोण में **भद्रकाल्यै नमः** कहकर अन्न-बलि देनी चाहिए। सभी दिशाओं में भिन्न-भिन्न देवताओं का नमन

कर बलि देने के बाद अन्त में मनु महाराज कुत्तों, पतितों, चाण्डालों, पापियों, रोगियों, कौओं, कीड़ों-मकोड़ों के लिए भूमि पर धीरे से अन्न का बलिभाग देने का निर्देश देते हैं–

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निवपेद् भुवि।।६२।।

इस प्रकार, काक-बलि, कुक्कुर-बलि, कृमि-बलि, छाग-बलि आदि का मूल अर्थ था– काकों के लिए बलि, कुक्कुरों के लिए बलि आदि। इसका समर्थन महान् वैयाकरण पाणिनि ने भी **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** इस सूत्र में किया है कि बलि शब्द के साथ तत्पुरुष समास होने पर चतुर्थी तत्पुरुष हो। किन्तु कालान्तर में सम्प्रदान कारक के स्थान पर सम्बन्ध कारक लग गया और छाग-बलि छागों के लिए बलि न होकर छागों की बलि बन गयी। आज भी तान्त्रिकी पूजा पद्धति में 'शिवाबलि' दी जाती है। 'शिवा' सियारिन को कहा जाता है। इस शिवा-बलि में रात्रि के समय श्मशान में खीर पकाकर उसे देवी मानकर भोजन हेतु छोड़ दिया जाता है। यह भी असम्भव नहीं कि प्राचीन काल में 'छाग बलि' का। कुछ ऐसा ही स्वरूप रहा हो। 'शिवाबलि' शब्द में तो पाणिनि की बात लोगों ने मान ली, नहीं तो सियारिन को भी पकड़कर यूप में बाँध डालते! किसी नीतिकार ने लिखा भी है कि अश्व, गज, सिंह की बलि न देकर अज की बलि से यही चरितार्थ होता है– "दैवो दुर्बलघातकः।" याज्ञवल्क्य-स्मृति का वचन है–

बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसत्क्रियाः।
भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः।।

(१, १०१)

मिताक्षरा व्याख्या में बलिकर्म का अर्थ भूतयज्ञ, स्वधा का अर्थ पितृयज्ञ, होम का अर्थ देवयज्ञ, स्वाध्याय का अर्थ ब्रह्मयज्ञ, अतिथि-सत्क्रिया का अर्थ मनुष्य यज्ञ बतलाया गया है और इन्हें पाँच महायज्ञ कहा गया है। तदनन्तर याज्ञवल्क्य कहते हैं–

देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद् भूतबलिं हरेत्।
अन्नं भूमौ श्वचाण्डालवायसेभ्यश्च निक्षिपेत्।।१०२।।

इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि देवताओं की आहुति अन्न से देनी चाहिए और जो पशु-वध करते हैं, वें स्मृति-वचन का उल्लंघन करते हैं। बलि-शब्द के इसी अर्थ का सम्प्रेषण 'मृच्छकटिकम्' नाटक में ब्राह्मण चारुदत्त के इस वाक्य से होता है–

यासां बलिः सपदि मद्गृहदेहलीनां
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः

(१, ६)

भागवत में जो हिंसा-विरोधिनी नीति प्रतिपादित की गयी है, उसकी प्रतिध्वनि अनेक ग्रन्थों में मिलती है। आचार्य चाणक्य-सदृश विचक्षण विद्वान् ने सभी व्यक्तियों के लिए मांस-भक्षण त्याज्य बतलाया है–

मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम्।

(चा० सू० ५६२)

मांस-भक्षण में क्या विडम्बना है, इसको इंगित करते हुए एक नीतिकार की वाणी है–

योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयोः पश्यतान्तरम्।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते।।

अर्थात्– जब कोई किसी प्राणि का मांस खाता है, तब दोनों में अन्तर देखिए– एक को क्षणिक आनन्द मिलता है और दूसरे को अपने प्राण खोने पड़ते हैं। जिह्वा की क्षणिक तृप्ति के लिए मुनष्य कितना बड़ा अन्याय करता है; इसकी

ओर यह संकेत है। स्याद्वादमञ्जरी और षड्दर्शन समुच्चय में उद्धृत इस नीति-श्लोक में सत्य-सार का गागर भरा पड़ा है–

अन्धे तमसि मज्जामः पशुभिर्ये यजामहे।
हिंसा नाम भवेद् धर्मो न भूतो न भविष्यति।।

जो पशुओं को मारकर यज्ञ करते हैं; वे घोर अन्धकार में निमग्न होते हैं; हिंसा नामक धर्म न तो कभी रहा है और न कभी रहेगा–

इसलिए यज्ञ का नाम अध्वर है यानी जिसमें ध्वर अर्थात् हिंसा नहीं है। अतः यज्ञ में हिंसा का लेश कथमपि कदापि स्वीकार्य नहीं है।

वैदिक वाङ्मय

हम वैदिक वाङ्मय से लेकर अबतक के कुछ प्रमुख ग्रन्थों का संक्षिप्त सन्दर्भ प्रस्तुत करते हैं। इस क्रम में सर्वप्रथम हम ऋग्वेद के दशम मण्डल १० वें सूक्त के १२६ वें मन्त्र में रात्रिसूक्त की चर्चा करते हैं जिससे देवी की आराधना की जाती है। इस सूक्त में देवी की गोद में पशु-पक्षियों सहित सभी प्राणियों के सुखपूर्वक सोने की चर्चा है।

नि ग्रामासो अविक्षन्त नि पद्वन्तो नि पक्षिणः।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः।।

अर्थात् उस करुणामयी देवी के अङ्क में सम्पूर्ण ग्रामवासी मनुष्य,पैरों से चलनेवाले गाय घोडे आदि पशु पंखों से उडनेवाले पक्षी एवं पतंग आदि किसी प्रयोजन से यात्रा करनेवाले पथिक और बाज आदि भी सुखपूर्वक सोते हैं।

यहाँ स्पष्टतः देवी की करुणात्मकता का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।उनका रक्त-पिपासु रूप वैदिक साहित्य में सर्वथा अपरिचित प्रतीत होता है।यहीं करुणा सनातन धर्म का धरोहर है।

शुक्ल यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ही यजमान के पशुओं की रक्षा की प्रार्थना की गयी है– **यजमानस्य पशून् पाहि** (यजुर्वेद १।१) जब यजमान के पशुओं की रक्षा प्रथम मन्त्र में की गयी है, तब उन पशुओं के वध का औचित्य कैसे हो सकता है? यजुर्वेद के एक अन्य मन्त्र (६।११) में भी पशुओं की रक्षा की प्रार्थना की गयी है– **पशूँस्त्रायेथाम्।** अन्यत्र भी सभी दोपायों (मानवों) एवं चौपायों (पशुओं) की रक्षा की प्रार्थना की गयी है– **द्विपादव चतुष्पात् पाहि** (१४।८)।

शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि संहिता का तीसवाँ अध्याय आलम्भन शब्द की वैदिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।यहाँ विभिन्न सामाजिक क्रियाकलापों के लिये विभिन्न जातियों के लोगों के आलम्भन का विधान किया गया है।जैसे–

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयाय अयोगूं कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम्।।५।।

अर्थात् ज्ञान के लिये ब्राह्मण,रक्षा के लिये क्षत्रिय,मरुत् के लिये वैश्य,तपस्या के लिये शूद्र, अन्धकार के लिये चोर,नरक सम्बन्धी क्रिया के लिये भूतपूर्व सैनिक,पापकर्म के लिये नपुंसक,खरीद-बिक्री के लिये लोहार, यौनक्रिया के लिये व्यभिचारिणी,अतिक्रोधियों के लिये क्षत्रिय कन्या में वैश्य पुरुष द्वारा उत्पन्न व्यक्ति का आलम्भन करना चाहिये।

अध्याय के अन्त में क्रियापद से युक्त मन्त्र इस प्रकार है–

अथेतानष्टौ विरूपानालभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च।।

अर्थात् इस तरह आठ प्रकार के विरूप पशुओं का आलम्भन करें–अतिदीर्घ,अतिह्रस्व, अतिस्थूल,अतिकृशकाय,अत्यधिक काले रंग का,

अत्यधिक गोरे रंग का,सर्वथा रोमरहित व्यक्ति का एवं अत्यधिक रोमयुक्त व्यक्ति का।

यहाँ आलम्भन शब्द की परवर्ती व्याख्या के अनुसार सभी व्यक्तियों की हिंसा होनी चाहिये;जैसा कि पाश्चात्य इतिहासकारों ने प्राचीन काल में नरमेध की बात उठाकर वैदिक धर्म को अपकृष्ट दिखाने का प्रयत्न किया है। किन्तु इस स्थल की वास्तविकता कुछ अन्य हीं है। यहाँ स्पष्ट उल्लेख है कि उक्त नरमेध यज्ञ सम्पन्न होने के बाद ये सभी अपने अपने घरों को लौट जाएँ।यदि यहाँ आलम्भन के द्वारा हिंसा अभिप्रेत होती तो यज्ञ के पश्चात् शवों को ठिकाने लगाने की बात कही गयी होती।अतःस्पष्ट है कि आलम्भन शब्द का वैदिक अर्थ 'समायोजित करना' है न कि हिंसा है।

वेदों में संहिता भाग के बाद ब्राह्मण-ग्रन्थों का महत्त्व है। हम यहाँ कौषीतकी ब्राह्मण का यह वचन उद्धृत करते हैं–

तद् यथा ह वा अस्मिंल्लोके मनुष्याः पशूनश्नन्ति यथैभिर्भुज्यते एवमेवामुष्मिंल्लोके पशवो मनुष्यानश्नन्ति एवमेभिर्भुज्यते।।"

यानि जैसे इस लोक में मनुष्य पशुओं को खाते हैं, वैसे परलोक में पशु मनुष्यों को खाते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि जो इस जन्म में मांस-भक्षण करते हैं; उन्हें अगले जन्म में पशु बनकर मांस-ग्रास बनना पड़ेगा। पशु-वध की इससे कठोर भर्त्सना और क्या हो सकती है?

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ के वास्तविक स्वरूप को न जानकर अनधिकारी, स्वार्थी, लोभी, ऋत्विज् श्रद्धालु यजमानों को लूटने में प्रवृत्त हो गये–

यथा ह वा इदं निषादा वा सेहगा वा पापकृतो वा वित्तवन्तं पुरुषमरण्ये गृहीत्वा कर्मन्वस्य वित्तमादाय द्रवान्ति, एवमेव त ऋत्विजो यजमानं कर्तमन्वस्य वित्तमादाय द्रवान्ति यंमनेवंविदो यजयन्ति।

इस विषय में शतपथ ब्राह्मण का यह प्रसंग भी अत्यन्त रोचक एवं महत्पूर्ण है–

"पुरुषं ह वै देवा अग्रे पशुमालेभिरे। तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम। सोऽश्वं प्रविवेश। तेऽश्वमालभन्त। तस्यालब्धाया मेधोऽपचक्राम। सोऽविं प्रविवेश। तेऽविमालभन्त। तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम। स इमां पृथिवीं प्रविवेश। तं खनन्त इवान्वीषुः। तं अन्वविन्दन्। तौ इमौ ब्रीहियवौ। स यावद्वीर्यवद्ध ह वा अस्य एते सर्वे पशव आलब्धाः स्युः तावद्वीर्यवद्धास्य हविरेव भवति। य एवमेतद्वेद। अत्रो सा सम्पद्यदाहुः पाड्क्त पशुरिति।।

(शतपथ० काण्ड १. अध्याय २, ब्रा० ३।६-७)

इसका आशय यह है कि सर्वप्रथम देवताओं ने पशु के रूप में 'पुरुष' का आलम्भन किया, उसमें उन्होंने 'मेधः'(बलि देने योग्य पदार्थ)की तलाश की; किन्तु सफलता नहीं मिली; पुनः उन्होंने अश्व, गाय, भेड़ और बकरे का वध किया किन्तु उनमें भी कुछ नहीं मिला। अन्त में उन्होंने पृथ्वी की तलाश की और वहीं उन्हें तत्त्व चावल और गेहूँ के रूप में मिला। अतः इन्हीं अन्नों से बलि करनी चाहिए।

जहाँ तक उपनिषदों का प्रसंग है; इनमें यज्ञीय बलि का विधान नहीं मिलता। मुण्डकोपनिषद् में इसका उपहास किया गया है। केनोपनिषद् में हैमवती उमा का प्राकट्य है; किन्तु इसमें वर्ण्य विषय ब्रह्म है। इसके अतिरिक्त देव्युपनिषत् तथा त्रिपुरातापिन्युपनिषत् हैं जिनमें भगवती की स्तुति है, किन्तु कहीं भी पशु-बलि का विधान नहीं है। त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में देवी-पूजा की विधि के बारे में यह उल्लेख है–

तत्रोंकारपीठं पूजयित्वा तत्राक्षरं बिन्दुरूपं तदन्तर्गतव्योमरूपिणीं विद्यां परमां स्मृत्वा महात्रिपुरसुन्दरीमावाह्य-

क्षीरेण स्नापिते देवि चन्दनेन विलेपिते।
बिल्वपत्रार्चिते देवि दुर्गेऽहं शरणं गतः।

यानि दूध से स्नान कर चन्दन का लेप लगाकर तथा बिल्वपत्र चढ़ाकर देवी की शरण में जाना चाहिए। पशु-बलि के विधान का यहाँ उल्लेख तक नहीं है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में भी गायों तथा रोयेंदार पशुओं की श्रीवृद्धि की कामना के साथ स्वाहा का विधान बताया गया है। जिससे यह परिलक्षित होता है कि वैदिक ऋषियों के मन में पशुधन के संरक्षण की कामना थी; उसके वध करने की नहीं।

आवहन्ती वितन्वाना कुर्वाणा चीरमात्मनः।
वासांसि मम गावश्च अन्नपाने च सर्वदा।।
ततो मे श्रियमावह लोमशां पशुभिः सह स्वाहा।
(१।४।१)

जो शाक्तेतर उपनिषद् हैं, उनमें बलि का विधान होने का प्रश्न ही न उठता है।

बौधायन-गृह्यसूत्र सबसे प्राचीन गृह्यसूत्र ग्रन्थ है, जिसका अतिशय सम्मान एवं महत्त्व है। इस गृह्यसूत्र के तृतीय प्रश्न के तृतीय अध्याय में दुर्गाकल्प की व्याख्या है जिसमें भगवती की पूजा का विधान है ।यहाँ विशुद्ध सात्त्विक विधि से पूजा-अर्चना का निरूपण किया गया है। इसमें पशु-बलि का कोई विधान नहीं है।

अथातो दुर्गाकल्पं व्याख्यास्यामः–

यज्ञोपवीतं रक्तपद्मपुष्पं सम्भारानुपकल्प्य मासि मासि कृत्तिकापूर्वाह्ने गोमयेन गोचर्ममात्रं चतुरस्रं स्थण्डिलं कृत्वा प्रोक्ष्य शौचेन सुव्रतस्तिष्ठन् भगवतीमावाहयेत्– 'जातवेदसे' इति 'ओमार्यां रौद्रीमावाहयामि' इत्यावाह्य 'तामग्निवर्णां' इति कूर्चं दत्वा 'अग्ने त्वं पारय' इति यज्ञोपवीतं दत्वाऽथैनां स्नापयति– 'आपो हि ष्ठा मयोभुवः' इति तिसृभिः 'हिरण्यवर्णाः' इति चतसृभिः 'पवमानः' इत्येतेनानुवाकेन मार्जयित्वा 'आर्यायै रौद्र्यै महाकाल्यै महायोगिन्यै सुवर्णपुष्प्यै देवसङ्कीर्त्यै महायज्ञ्यै महावैष्णव्यै, महापृथिव्यै मनोगम्यै शङ्खधारिण्यै नमः' इत्येकादशनामधेयैर्गन्धपुष्पधूपदीपैः 'अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः' इत्येतैरेवार्चयित्वा सावित्र्या 'भगवत्यै दुर्गादेव्यै हविर्निवेदयामि' इति हविर्निवेद्य शेषमेकादशनामधेयैर्हुत्वा पञ्चदुर्गां जपेद्दश, स्वस्ति जपेत् 'जातो यदग्ने, वषट् ते विष्णो, वास्तोष्पते, एवावन्दस्व, आ नो नियुद्भि, हिरण्यवर्णाः अभयं कृणोतु, अश्वावतीः, त्वं वरुणः, बृहस्पते युवमिन्द्रश्च, स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः' इति जपित्वा 'शं च मे सूर्यश्च मे' इत्येतैरेकादशभिरनुवाकैश्च जपेत् सावित्र्या 'भगवत्यै दुर्गादेव्यै हविरुपासयामि' इत्युद्रास्य शेषं ब्राह्मणेभ्यो दत्वा संवत्सरमुपासीत।। सर्वकामास्सिध्यन्तीत्याह भगवान् बौधायनः।

अर्थात् अब दुर्गा के विषय में व्याख्या कर रहे हैं–

यज्ञोपवीत और लाल कमल का फूल सामग्री के रूप में संकलित कर प्रतिमास कृतिका नक्षत्र के दिन प्रातःकाल में गाय के गोबर से गाय की लम्बाई के बराबर चौकोर वेदी का निर्माण कर उसे जल से सिक्त कर पवित्र होकर नियमों का पालन करते हुए बैठकर भगवती का आवाहन करें–

जातवेदसे सुनवामसोममरातीयतो निदहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।।
(ऋ० १।९९।१)
ॐ आर्यां रौद्रीमावाहयामि।

इस तरह आवाहन कर,

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्यामहेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः।।
(देव्यथर्वशीर्ष :६)

इस मन्त्र से मुट्ठी भर जयन्ती अथवा दूर्वा दें।

अग्ने त्वं पारयानव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरतिदुर्गाणि विश्वा।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः।।
(ऋ० १।१८६।२)

इस मन्त्र से यज्ञोपवीत समर्पित कर निम्न मन्त्रों से स्नान करायें–

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽऊर्जे दधातन।
महेरणाय चक्षसे।।
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः।
उशतीरिव मातरः।।
तस्मा ऽअरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः।।४।।
(अथर्व०१।६।५)

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका
यासु जातः सविता यास्वग्निः।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णा-
स्ता न आपःशं स्योना भवन्तु।।१।।
यासां राजा वरुणो याति मध्ये
सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णा-
स्ता न आपःशं स्योना भवन्तु।।२।।
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं
या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णा-
स्ता न आपःशं स्योना भवन्तु।।३।।
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः
शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावका-
स्ता न आपः शं स्योना भवन्तु।।४।।
ॐ पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः
पुनन्तु प्रपितामहाःपवित्रेण शतायुषा।।पुनन्तु मा
पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा
विश्वमायुर्व्यश्नवै।।१।।
अग्नऽआयूँषि पवसऽआसुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्।।२।।
पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु सर्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि माम्।।३।।
पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेणदेव दीद्यत्।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँरनु।।४।।
यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा।
ब्रह्म तेन पुनातु माम्।।५।।
पवमानः सोऽअद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः।
यःपोता स पुनातु मा।।६।।
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च।
मां पुनीहि विश्वतः।।७।।
वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो
वीतपृष्ठाः।
तया मदन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो
रयीणाम्।।८।।

इसके बाद गन्ध, पुष्प, धूप एवं दीप से निम्नलिखित ग्यारह रूपों की पूजा इस प्रकार करें–

ॐ आर्यायै नमः अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः।
ॐ रौद्र्यै नमः अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः।
ॐ महाकाल्यै नमः अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः।
ॐ महायोगिन्यै नमः अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः।
ॐ सुवर्णपुष्प्यै नमः अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः।
ॐ देवसङ्कीर्त्यै नमः अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः।
ॐ महायज्ञ्यै नमः अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः।
ॐ महावैष्णव्यै नमः अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः।
ॐ महापृथिव्यै नमः अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः।

ॐ मनोगम्यै नमः अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः।
ॐ शङ्खधारिण्यै नमः अमुष्यै नमोऽमुष्यै नमः।

इस प्रकार अर्चना कर सावित्री मन्त्र(**ॐ भूः ॐभुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनःॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ।**) जपकर निम्नलिखित मन्त्र से दुर्गा देवी को हविष् निवेदित करें–

ॐ भगवत्यै दुर्गादेव्यै हविर्निवेदयामि।

इसके बाद शेष हविष् को उपर्युक्त ग्यारह नामों से अग्नि में समर्पित कर

दश बार पञ्चदुर्गा का जप करें।इसके बाद स्वस्तिवाचन करे। पुनः निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करें–

जातो यदग्ने भुवनाव्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।

(ऋ०७।१४।१६)

वषट् ते विष्णवास आकृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।

(ऋ० ७।९९।७)

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।। (ऋ० ७।५४।३)

एवावन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्याधीरममृतस्य गोपाम्।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत् पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे।। (ऋ०८।४२।२)

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्त्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम्।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।(ऋ० ७।९३।५)

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपःशं स्योना भवन्तु।।१।। (अथर्व० १।६।५।१)

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोभयं सोमः सविता नः कृणोतु।
अभयं नोस्तूर्वन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु।।१।। (अथर्व० ६।४।५।१)

अश्वावतीर्गोतमीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।। (ऋ० ७।४१।७)

त्वां वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।। (ऋ० ७।१४।३)

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।। (ऋ०७।९७।१०)

स्वस्ति न ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।। (ऋ०१।८९।६)

इसके बाद सावित्री मन्त्र जप करते हुए **भगवत्यै दुर्गा देव्यै हविरुपासयामि** इस मन्त्र से भगवती को नैवेद्य समर्पित कर शेष भाग ब्राह्मणों को दान में देकर वर्ष पर्यन्त भगवती की उपासना करें। इससे सभी कामनाओं की सिद्धि होती है– ऐसा बौधायन कहते हैं।

❑❑

क्रमशः ....

संक्षिप्त रामकथा

(वाल्मीकि रामायणके आधार पर)

प. भवनाथ झा

इसमें सन्देह नहीं कि रामकथा का मुख्य आधार महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण है, जो सबसे प्रामाणिक एवं प्राचीनतम है। संस्कृत भाषा में होने तथा परिमाण में विशाल होने के कारण सामान्य पाठक इस पवित्र ग्रन्थ में वर्णित रामकथा का आस्वादन नहीं कर पाते हैं। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड की समीक्षा करने पर प्रतीत होता है कि इस काण्डमे सबसे अधिक अवान्तर कथाएँ जोड़ी गयी हैं, जिनका दूर दूर तक रामकथा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, बजाय इसके कि वे कथाएँ रामकथा के पात्र के द्वारा कही गयी है। रामकथा के अनेक विद्वानों ने वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में अनेक सर्गों को प्रक्षिप्त माना है। यदि उन सर्गो को हटा दिया जाये तो वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड की कथा एकदम स्वाभाविक हो जाती है।

यहाँ बालकाण्ड के इसी सम्पादित सर्गों की संक्षिप्त कथा हम प्रकाशित कर रहे हैं। अत: यहाँ जो सर्ग संख्या दी गयी है, वह गीता प्रेस से प्रकाशित सर्गसंख्या का संकेत नहीं करता है। लेकिन यहाँ जो भी कथा है, वह वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के किसी न किसी सर्ग में अवश्य मिल जायेंगे।

महर्षि वाल्मीकि ने एक दिन तपस्या एवं वेदाध्ययन में लीन महामुनि नारद से पूछा – 'हे नारद! इस लोक में इस समय कौन ऐसा व्यक्ति है, जो गुणी, बलवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़निश्चयी, चरित्रवान् आदि आदर्श नायक के लक्षणों से युक्त है।' तीनों लोकों के ज्ञाता नारद ने वाल्मीकि से कहा – 'मुनिवर! इन गुणों से युक्त तो इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न श्रीराम ही है। वे महातेजस्वी, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान् एवं नीतिमान् हैं।' नारद श्रीराम के गुणों का बखान करते जा रहे थे। फिर बाद में उन्होंने सम्पूर्ण राम-कथा संक्षिप्त में सुना दी।

रामायण-अवतरण

नारद से पूरी राम कथा सुनकर उनका आतिथ्य कर वाल्मीकि अपने शिष्यों के साथ मध्याह्न-स्नान करने के लिए तमसा तट की ओर चले। तट पर पहुँचकर उन्होंने अपने शिष्य भरद्वाज से वल्कल आदि रखने के लिए कहा। इसी बीच उन्होंने एक पक्षी का करुण क्रन्दन सुना। वह 'क्रौंची' मादा पक्षी थी। उसके नर क्रौंच को एक व्याध ने बाण से मार गिराया था। महर्षि द्रवित हो उठे – 'अरे निर्दयी व्याध! तुमने जो क्रौंच के जोड़े में से एक को मार डाला इससे तेरा सदैव अपयश होगा' ये शब्द महर्षि के मुख से अनायास

निकल पड़े थे। बाद में उन्होंने सोचा कि यह मैंने क्या कह डाला। उन्होंने भरद्वाज से कहा – 'इस पक्षी के शोक में मेरे मुख से जो वाणी निकली उसमें तो समान वर्ण-संख्या से युक्त चार 'चरण' भी हैं। इसे वीणा के साथ गाया भी जा सकता है। ठीक है, आज से इसे 'श्लोक' कहा जाए।' स्नानादि सम्पन्न कर सभी आश्रम लौट पड़े। महर्षि वाल्मीकि इसी 'श्लोक' के विषय में सोचते रहे। इसी बीच ब्रह्मा उस आश्रम पर पधारे। वाल्मीकि ने उनसे भी इस पूरी घटना की चर्चा की तो उन्होंने वाल्मीकि को इसी 'श्लोक' नामक छन्द में रामकथा लिख देने की प्रेरणा दी। ब्रह्मा के अन्तर्धान हो जाने के बाद महर्षि ने भी समास, सन्धि आदि व्याकरणिक नियमों तथा समता, माधुर्य आदि काव्य-गुणों पर विचार करते हुए पूरी राम-कथा लिख डाली।

प्रथमः सर्गः

जिस वंश में आदिकाल से सगर आदि महान् राजा हुए उसी इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न श्रीराम की यह कथा है। सरयू के तट पर एक कोशल नामक राज्य था जिसकी राजधानी अयोध्या थी। यह इन्द्र की नगरी के समान यह सुसज्जित एवं सुरक्षित थी। वहाँ बड़े-बड़े शूर-वीर थे। पुरवासी सभी अपने-अपने क्रिया-कलापों में लगे रहते थे। ऐसी नगरी के राजा दशरथ हुए।

द्वितीयः सर्गः

राजा दशरथ सभी गुणों से युक्त होने के कारण पुरवासियों के बहुत प्रिय थे। वे महर्षि कहलाने योग्य राजर्षि थे। जैसे इन्द्र अमरावती का पालन करते हैं उसी प्रकार राजा दशरथ भी अयोध्या का पालन करते थे। उस राज्य के नागरिक भी गुणों से भरे-पूरे थे। सब धन-धान्य, विद्या, वीरता में बढ़े-चढ़े थे। सभी अपने-अपने कर्तव्यों में लगे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के प्रति सचेष्ट थे। उस राज्य में सभी सैनिक शूरवीर थे; दूर देश से मँगाये गये उत्तम अश्व तथा ऐरावत के समान विशाल हाथी थे। ऐसी नगरी में राजा दशरथ तारामण्डल पर चन्द्रमा के समान राज्य करते थे।

तृतीयः सर्गः

इस अयोध्या में आठ मन्त्री थे – धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल एवं सुमन्त्र। ऋषियों में वसिष्ठ और वामदेव तो पुरोहित ही थे; साथ-साथ सुयज्ञ, जाबालि, कश्यप, गौतम, दीर्घायु, मार्कण्डेय और कात्यायन भी राजा दशरथ को विविध विषयों पर मन्त्रणा देते रहते थे। ये मन्त्री तथा ऋषिगण उत्तम गुणों से विभूषित थे। दूर-दूर तक इनकी ख्याति थी; सभी अर्थनीति एवं धर्मनीति के अनुसार राजा को सदा सत्कार्य की प्रेरणा देते रहते थे, जिससे तीनों लोकों में राजा दशरथ की ख्याति फैल गयी थी।

चतुर्थः सर्गः

सब कुछ होने के बाद भी पुत्र नहीं होने से राजा दशरथ चिन्तित थे। वे पुत्र के लिए यज्ञ करने की बात सोच ही रहे थे कि सुमन्त्र ने एक ऋषि द्वारा बहुत दिन पहले कही हुई कथा सुना दी कि अंग देश के राजा रोमपाद राजा दशरथ के मित्र होंगे। उनकी पुत्री शान्ता एवं जामाता ऋष्यश्रृंग आकर जब यज्ञ कराएँगे तब राजा दशरथ को पुत्र होगा। मन्त्रिसत्तम सुमन्त्र के मुख से यह कथा सुनकर राजा दशरथ अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने जाकर पूरी बात गुरु वसिष्ठ से सुना दी और उनसे अनुमति लेकर बहुत से नगरवासियों और अपनी रानियों को साथ लेकर अपने मित्र राजा रोमपाद से मिलने अंग देश के लिए चल पड़े। वहाँ सात-आठ दिनों तक आतिथ्य स्वीकार करने के बाद राजा ने आने का कारण बतलाते हुए कहा कि आपकी पुत्री शान्ता एवं जामाता मेरी राजधानी

चलें। वहाँ बहुत बड़ा कार्य आ पड़ा है। राजा रोमपाद के कहने पर ऋष्यशृंग शान्ता को लेकर राजा दशरथ के साथ अयोध्या पहुँचे। वहाँ उनके स्वागत का भव्य आयोजन किया गया। उन्हें अपने बीच पाकर सब प्रसन्न हो गये।

पञ्चमः सर्गः

इसके बाद वसन्त ऋतु आ जाने पर राजा ने कुलगुरु वसिष्ठ से प्रार्थना की कि शास्त्रानुसार मेरा यज्ञ करा दीजिए। वसिष्ठ से स्वीकृति मिल जाने पर यज्ञ की तैयारियाँ आरम्भ कर दी गयी अतिथि राजाओं के लिए आवास बनाये गये; शिल्पी मण्डप बनाने में लग गये। राजा का स्पष्ट आदेश था कि यथायोग्य सभी शिल्पियों का सम्मान किया जाए। राजा ने सुमन्त्र को बुलाकर सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र राजाओं को निमन्त्रित करने का आदेश दिया। मिथिला के राजा जनक को लाने के लिए तो सुमन्त्र को स्वयं जाने के लिए कहा। केकय, अंग, कोसल, मगध आदि देशों में कुटुम्ब राजाओं के लिए भी सुमन्त्र को स्वयं जाने की आज्ञा दी। कुछ ही दिनों के बाद सभी राजागण पहुँच गये। यज्ञ की पूरी तैयारी हो चुकी थी।

षष्ठः सर्गः

विभाण्डक मुनि के पुत्र ऋष्यशृंग भी शान्ता के साथ अयोध्या पधार चुके थे। उन्होंने यज्ञ के लिए इष्टका चयन कर पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ कर दिया। उस यज्ञ की सभा में सब ऋषिगण आकर ब्रह्मा से कहने लगे कि आपका वरदान पाकर रावण नाम का राक्षस हमारा बहुत अनिष्ट कर रहा है अतः इसके वध का कोई उपाय करें। ब्रह्मा ने शेषशायी विष्णु से निवेदित किया – 'हे भगवान्! महाराज दशरथ की तीन रानियाँ ह्री, श्री एवं कीर्ति के समान देवियाँ हैं; आप चार रूपों में अवतरित होकर इनके पुत्र के रूप में जन्म लें और लंका के राजा रावण का वध करें, जिससे सभी देव, गन्धर्व, सिद्ध एवं महर्षि त्राण पायेंगे।' ब्रह्मा की बातों पर विचार कर भगवान् विष्णु ने कहा – 'आपलोग भय न करें। मैं राक्षसगण एवं बन्धु-बान्धव सहित रावण का संहार कर ग्यारह हजार वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करूँगा।' इस आश्वासन के बाद देवतागण भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे।

सप्तमः सर्गः

भगवान् विष्णु तो सर्वज्ञ थे, तथापि उन्होंने देवताओं से ही रावण को मारने का उपाय पूछा। इसपर देवताओं ने कहा कि आप मनुष्य के रूप में जन्म लेकर युद्ध में उसका वध कीजिए। देवताओं ने रावण की तपस्या एवं उस तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा द्वारा दिये गये वरदान की भी चर्चा की। ब्रह्मा ने उसे वर दे डाला था कि मनुष्य को छोड़कर संसार का कोई अन्य जीव रावण का कुछ नहीं बिगाड़ पायेगा। ये बातें सुनकर भगवान् विष्णु ने दशरथ के घर जन्म लेने का निश्चय किया।

इधर राजा दशरथ भी पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे थे। दैवी चमत्कार से इस यज्ञ-कुण्ड से एक दिव्य-पुरुष निकला। उस पुरुष के हाथों में दिव्य पायस (खीर) से भरी एक सोने की थाल थी। उसने वह थाल दशरथ को समर्पित करते हुए कहा – 'यह दिव्य पायस अपनी रानियों को खिला दें। इससे आपके पुत्र होंगे।' राजा उस पायस को लेकर अन्तःपुर चले। वहाँ आधा भाग कौसल्या को, आधे भाग में से आधा सुमित्रा को तथा शेष भाग कैकेयी को दे दिया। उस पायस को खाने से रानियाँ गर्भवती हुई। राजा दशरथ कृतार्थ हो चले।

अष्टमः सर्गः

यज्ञ समाप्त होने के बाद सभी राजागण चले गये। ऋष्यशृंग भी शान्ता के साथ सादर विदा किये गये। इसके बाद एक वर्ष बीत जाने पर चैत्र शुक्ल नवमी को पुनर्वसु नक्षत्र में श्रीराम का जन्म हुआ। उस समय कर्क लग्न था। पुष्य नक्षत्र में मीन लग्न में भरत तथा आश्लेषा नक्षत्र और कर्क लग्न में लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। ये चारों भाई तारे की भाँति कान्तिमान् थे। इनके जन्म से सभी देवता तक प्रसन्न हो चले। ग्यारहवें दिन चारों का नामकरण कराया गया। चारों भाईयों का यथासमय सभी संस्कार कराये गये। श्रीराम और लक्ष्मण में परस्पर प्रगाढ़ स्नेह हो गया। इसी प्रकार भरत के साथ शत्रुघ्न की प्रबल प्रीति हो चली। इन भाईयों के विवाह पर एक दिन सभा में चर्चा चल ही रही थी कि ऋषि विश्वामित्र पधारे। राजा दशरथ ने उनकी पूजा की फिर उन्होंने अन्य किसी सेवा करने की आकांक्षा प्रकट की तथा आने का प्रयोजन पूछा। इसपर विश्वामित्र प्रसन्न हो गये।

नवमः सर्गः

दशरथ द्वारा किए गये सत्कार से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने कहा– 'महाराज! मैं दस दिनों तक चलनेवाले एक यज्ञ का अनुष्ठान कर रहा हूँ जिसमें दैत्यों के उपद्रव की आशंका है। यद्यपि मैं स्वयं शाप से उन्हें भस्म कर सकता हूँ लेकिन यज्ञ के बीच में हिंसा उचित प्रतीत नहीं होती है; अतः मैं इस यज्ञ की रक्षा के लिए आपके ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को लेने आया हूँ। मैं इन्हें अमोघ शस्त्रास्त्रो की शिक्षा दूँगा जिससे राक्षसगण इनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेंगे।' महर्षि विश्वामित्र की बातें सुनकर दशरथ श्रीराम के वियोग की आशंका से अचेत हो गये।

दशमः सर्गः

होश आने पर दशरथ ने कहा– 'मुनिवर! राम तो अभी युवा भी नहीं हुए हैं। वे कैसे राक्षसों का सामना कर सकेंगे। मेरे पास बहुत बड़ी सेना है, उसे लेकर मैं स्वयं यज्ञ की रक्षा के लिए राक्षसों से युद्ध करता रहूँगा।' किन्तु श्रीराम के लिए ही आग्रह करते हुए विश्वामित्र ने रावण का परिचय दे डाला। उनके दो सेनापति मारीच और सुबाहु के विषय में भी उन्होंने पूरा वृत्तान्त सुना दिया। यह सुनकर तो दशरथ के हाथ-पैर सुन्न हो गये और श्रीराम को छोड़ देने के लिए गिड़गिड़ाने लगे। इसपर विश्वामित्र के क्रोध की सीमा नहीं रही।

एकादशः सर्गः

क्रुद्ध होकर महर्षि विश्वामित्र ने राजा दशरथ से कहा– 'राजन्! आप प्रतिज्ञा करके अब माँगने पर श्रीराम को नहीं दे रहे हैं; यह इक्ष्वाकु कुल की मर्यादा के अनुरूप नहीं है।' विश्वामित्र के बिगड़ जाने पर कुलगुरु वसिष्ठ उन्हें समझाने लगे– 'राजन्! इक्ष्वाकु कुल में सभी राजा धर्म के अवतार होते आये हैं अतः आप को भी धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। राम चाहे धनुष-बाण चलाना न जानते हों ; किन्तु महर्षि विश्वामित्र के द्वारा रक्षित रहेंगे। राक्षस उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगा। विश्वामित्र सभी शस्त्रास्त्रों में पारंगत हैं अतः अपने मन से शोक हटाकर राम को विश्वामित्र के साथ भेज दीजिए। इससे राम का ही भला होगा।' वसिष्ठ की बातें सुनकर दशरथ आश्वस्त हुए और श्रीराम को विश्वामित्र के सथ भेज देना स्वीकार कर लिया।

द्वादशः सर्गः

कुलगुरु वसिष्ठ के कहने पर दशरथ श्रीराम और लक्ष्मण को बुलाकर विश्वामित्र के साथ जाने की आज्ञा दी। वसिष्ठ ने स्वस्तिवाचन कर उन्हें

विदा किया। आगे-आगे विश्वामित्र और पीछे-पीछे लक्ष्मण के साथ श्रीराम धनुष-बाण लेकर चले। सरयू के तट पर मुनि ने बला एवं अतिबला नामक दो विद्याएँ प्रदान की, जिनके प्रभाव से सोते समय राक्षस उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगा; उन्हें भूख और प्यास नहीं लगेगी। वहीं सरयू के तट पर मुनि की सेवा करते हुए दोनों भाईयों ने पर्ण-शय्या पर रात बितायी।

त्रयोदशः सर्गः

प्रातःकाल सन्ध्या-वन्दन कर वे सब चलकर गंगा और सरयू के संगम पर पहुँचे। यहाँ उन्होंने एक आश्रम देखा। श्रीराम की जिज्ञासा पर विश्वामित्र ने उसे कामदेव का आश्रम बतलाया तथा उसी स्थान पर भगवान् शिव के द्वारा कामदेव को भस्म करने की कथा सुनायी। कथा का समापन करते हुए विश्वामित्र ने कहा – 'राम! उसी दिन से कामदेव का नाम 'अनङ्ग' पड़ गया और जहाँ उन्होंने अपना अंग त्याग किया वह देश अब 'अंग' कहलाता है।' उसी आश्रम में सुखपूर्वक सबने रात बितायी। वहाँ के स्थानीय लोगों ने भी इनकी अभ्यर्थना की।

चतुर्दशः सर्गः

प्रातःकाल होने पर तपस्वी ऋषियों ने एक सुन्दर नाव बनाकर विश्वामित्र, श्रीराम और लक्ष्मण को दी जिसपर उन्होंने गंगा पार किया। बीच में विश्वामित्र ने 'मानस सरोवर' से निकली सरयू एवं गंगा नदी के संगम को प्रणाम करने का निर्देश दिया। गंगा के दक्षिणी तीर पर पहुँच कर मलद और करूष देश का वृत्तान्त सुनाया तथा उसी स्थल पर यक्षिणी ताटका के कारण अशान्ति फैल जाने की बात कही। अन्त में विश्वामित्र ने कहा – 'राम! मेरी आज्ञा से उस दुष्टा ताटका को मारकर इस देश में फिर से शान्ति स्थापित करें।'

पञ्चदशः सर्गः

महर्षि विश्वामित्र ने ताटका की उत्पत्ति की कथा राम को सुनायी – 'राम! प्राचीन काल में सुकेतु नामक यक्ष ने यज्ञ कर पुत्री के रूप में इस ताटका को प्राप्त किया। इस ताटका का विवाह सुन्द से हुआ, जिसे अगस्त्य मुनि ने शाप देकर मार डाला। इसके बाद ताटका अपने पुत्र मारीच के साथ अगस्त्य को खा जाने के लिए दौड़ पड़ी तो मुनि ने दोनों को राक्षस बन जाने का शाप दिया।' विश्वामित्र ने आगे समझाया कि स्त्री होने के कारण इसका वध करने में कुछ भी सोचना व्यर्थ है क्योंकि अपराधी को दण्ड देना राजा का धर्म है। इन्द्र ने भी विरोचन की पुत्री पापिनी मन्थरा का वध किया था।

षोडशः सर्गः

श्रीराम ने विश्वामित्र की आज्ञा को शिरोधार्य किया – 'हे ब्रह्मवादिन्! देश के हित के लिए आप जैसे ऋषिवर जो आज्ञा देंगे वह मैं करूँगा।' श्रीराम ने धनुष थाम कर उसकी टंकार से वन को कँपा डाला। इस टंकार को सुनकर ताटका श्रीराम की ओर दौड़ पड़ी। इसकी आकृति दिखाते हुए राम ने लक्ष्मण से कहा कि यद्यपि यह भयंकर है फिर भी इसका बल और इसकी गति समाप्त कर देता हूँ। विश्वामित्र ने भी श्रीराम की विजय की कामना प्रकट की। ताटका अनेक रूप धारण करती हुई लड़ती रही, श्रीराम उसे धीरे-धीरे अशक्त बनाते गये, अन्त में श्रीराम के एक ही बाण से वह चल बसी। देवता और ऋषिगण श्रीराम की जय-जयकार करने लगे। उन्होंने श्रीराम को सभी शस्त्रास्त्र दे देने का आग्रह विश्वामित्र से किया। विश्वामित्र ने श्रीराम और लक्ष्मण के साथ उसी वन में रात्रि विश्राम किया।

सप्तदशः सर्गः

दूसरे दिन प्रातःकाल महर्षि विश्वामित्र ने सभी प्रकार के अस्त्रों एवं शस्त्रों की विद्या प्रदान की। ये सभी दिव्य शस्त्रास्त्र थे जो देवताओं तक के लिए भी दुर्लभ थे। सभी दिव्य शस्त्रास्त्र श्रीराम के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और निवेदन किया – 'हे राघव! हम आपके दास हो गये हैं अब हमें जो आज्ञा देंगे हम पालन करेंगे।'

अष्टादशः सर्गः

विश्वामित्र से अस्त्र-शस्त्रों को ग्रहण कर श्रीराम ने इनकी संहार-विधि के विषय में भी पूछा। विश्वामित्र ने सारी विधियाँ बता दी। एक बार फिर सत्यवान्, सत्यकीर्ति, धृष्ट रभस आदि अन्य दिव्य शस्त्रास्त्र भी श्रीराम को विश्वामित्र ने दिया। ये अपने-अपने स्वरूप में उपस्थित होकर श्रीराम की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे फिर उनकी आज्ञा से अपने-अपने स्थान पर चले गये। विश्वामित्र के पीछे-पीछे चलते हुए दोनों भाई एक पर्वत की तलहटी में एक आश्रम पर जा पहुँचे।

एकोनविंशः सर्गः

इस आश्रम की कथा सुनाते हुए महर्षि बोले – 'राम! इस आश्रम में वामनावतार से पूर्व भगवान् विष्णु ने सौ युगों तक तपस्या की थी। उस समय यह सिद्धाश्रम कहलाता था। इसी स्थान पर राजा बलि ने यज्ञ किया था, जिसमें भगवान् विष्णु वामनावतार लेकर उपस्थित हुए थे।' महर्षि ने वामनावतार की कथा सुना दी। अन्त में उन्होंने कहा – 'मैं भी इसी आश्रम में रहता हूँ।' विश्वामित्र दोनों भाइयों को साथ लिए आश्रम में प्रवेश कर गये। आश्रमवासियों ने सबका स्वागत किया। विश्वामित्र ने उसी दिन यज्ञ का संकल्प भी ले लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीराम एवं लक्ष्मण सन्ध्यावन्दन कर विश्वामित्र के समीप पहुँच गये और गुरु की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे।

विंशः सर्गः

श्रीराम और लक्ष्मण ने विश्वामित्र से कहा – 'भगवन्! हमें राक्षसों के आने का समय बता दें।' वहाँ उपस्थित अन्य मुनियों ने उन्हें कहा कि विश्वामित्र तो मौन-व्रत धारण किए हुए हैं। आप छः रात्रि तक इनके यज्ञ की रक्षा करते रहें। दोनों रघुकुल कुमार यज्ञ की रक्षा करने लगे। छठे दिन जब यज्ञ आरम्भ हुआ तो आकाश में बड़ा भयानक शब्द हुआ। मारीच और सुबाहु दोनों भाई भयंकर गर्जन करते हुए आ धमके थे। श्रीराम ने मानवास्त्र का प्रयोग कर उसे दूर समुद्र में फेंक दिया लेकिन आग्नेयास्त्र से सुबाहु का उसी स्थान पर वध कर दिया। वायव्यास्त्र से अन्य राक्षसों का भी वध कर ऋषियों और देवताओं को प्रसन्न कर दिया।

एकविंशः सर्गः

यज्ञ समाप्त हो जाने पर विश्वामित्र श्रीराम और लक्ष्मण को साथ लेकर अनेक ऋषियों के साथ मिथिला की ओर चले। वहाँ धनुष यज्ञ होने वाला था। इस सिद्धाश्रम को छोड़ते समय विश्वामित्र ने वन देवता से कह डाली कि मैं अपना यज्ञ सम्पन्न कर सिद्धाश्रम छोड़कर उत्तर की ओर हिमालय पर जा रहा हूँ। चलते-चलते सभी शोणभद्र नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ महर्षि विश्वामित्र से श्रीराम ने उस प्रदेश के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। इससे प्रेरित होकर विश्वामित्र उस प्रदेश का वृत्तान्त सुनाने लगे।

क्रमशः ....

❑❑

संक्षिप्त व्रत-परिचय

मकर संक्रान्ति : 14 जनवरी

धनु-राशि के चलकर सूर्य जब मकर राशि में प्रवेश करते हैं, तब मकर संक्रान्ति होती है। यह संक्रमण काल बहुत सूक्ष्म होता है। इसलिए दान एवं स्नान के लिए 'पुण्यकाल' का विधान किया गया है। मकर संक्रान्ति में 'माधव' के मत से 20 घटी अर्थात् 480 मिनट और हेमाद्रि के मत से 34 घटी अर्थात् 816 मिनट संक्रमण काल के बाद पुण्यकाल होता है। इस दिन तिल का उबटन लगाना स्वास्थ्यवर्द्धक माना गया है। तिल के तेल का दीप मन्दिर में जलाना चाहिए तिल का भक्षण भी प्रशस्त कहा गया है।

संकष्ट चतुर्थी। गणेश चौठ (संकष्टहर गणपति व्रत)

माघ कृष्ण चतुर्थी के दिन गणेश की उत्पत्ति मानी गयी है। इसका अन्य नाम श्रीभालचन्द्र चतुर्थी भी है। 'व्रतरत्नाकर' (पृष्ठ 176-188) में इसका विस्तृत उल्लेख है। इसमें षोडशोपचार से गणेश की पूजा कर 21 प्रकार के पत्तों से गणेश के 21 नामों की पूजा की जाती है। पुनः गणपति के 108 नामों की पूजा की जाती है। "ऐसा आया है कि व्यास ने यह व्रत युधिष्ठिर को बताया था" (धर्मशास्त्र का इतिहास : पी0 वी काणे)

मास शिवरात्रि

वर्ष भर सभी मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि 'शिवरात्रि' के नाम से प्रचलित है। इनमें माघ और फाल्गुन की शिवरात्रि विशेष महत्त्वपूर्ण है। माघ की चतुर्दशी मिथिला क्षेत्र में नरक निवारण के नाम से विशेष महत्त्वपूर्ण है। ईशान संहिता को उद्धृत करते हुए म0 म0 रुद्रधर ने शिवलिंग के रूप में भगवान् शंकर की उत्पत्ति इस दिन माना है। सन्ध्या काल जिस दिन चतुर्दशी तिथि रहे उस दिन यह व्रत किया जाता है। दिन भर निराहार रहकर सन्ध्या में भगवान् शंकर की आराधना कर पारणा करते हैं। पारणा में बेर, कलाय (कलावा, मटर का एक प्रकार, कुसी केराव), मिसरीकन्द आदि प्रसिद्ध है।

इसके सम्बन्ध में भी एक भ्रान्ति है कि त्रयोदशी के दिन मास शिवरात्रि होती है। दरअसल जिस दिन सन्ध्या में चतुर्दशी रहे उस दिन सम्भावना हो जाती है कि प्रातःकाल त्रयोदशी तिथि हो। वस्तुतः इसके लिए सन्ध्याकाल में चतुर्दशी होना आवश्यक है। उस दिन प्रातःकाल में चतुर्दशी भी हो सकती है और त्रयोदशी भी हो सकती है।

मौनी अमावस्या :

माघ कृष्ण अमावास्या में मौन-व्रत का महत्त्व है।

कलि-वर्षारम्भ :

सन् 2005 में माघ शुक्ल की प्रतिपदा तिथि से कलि संवत्सर 5107 का आरम्भ (संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा का पंचांग) हुआ था। इसके अनुसार कलिगताब्द- 5106, कलिभोग्याब्द 426894 वर्ष, सृष्टि गताब्द 1972949106 वर्ष तथा भोग्याब्द 2347050894 वर्ष कलियुग में शेष था। गणित-ज्योतिष के लिए यह गणना महत्त्वपूर्ण है।

वसन्त पंचमी :

यही 'श्री पंचमी' के नाम से भी प्रसिद्ध है। धर्मशास्त्र के ग्रन्थों के अनुसार इस दिन लक्ष्मी की पूजा 'कुन्द' (चमेली) के फूल से की जाती है। 'प्राणतोषिणी' ग्रन्थ के अनुसार लक्ष्मी के साथ 'वसन्त' ऋतुराज कामदेव एवं रति की भी पूजा होती है, अतः यह वसन्तपंचमी भी कहलाता है। इसी दिन सरस्वती की पूजा करने की परम्परा भी है, जिसका मूल सम्भवतः मत्स्य-पुराण का 66वाँ अध्याय है, जिसमें पंचमी तिथि में सरस्वती-पूजा का विधान किया गया है।

अचला सप्तमी / रथ सप्तमी :

यह रथ सप्तमी के नाम से प्रसिद्ध है। सूर्योदय के समय जिस दिन सप्तमी तिथि रहे, उस दिन यह व्रत किया जाता है। इस दिन स्नान का माहात्म्य है। 'दिवोदासीय मदनरत्न' ग्रन्थ के अनुसार ईख के टुकड़ा से नदी के जल को हिलाकर अपने मस्तक पर अर्क (आक, अकवन) तथा वेर के सात-सात पत्ते रखकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए स्नान करना चाहिए।

यद्यज्जन्मकृतं पापं मया जन्मसु सप्तसु।
तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी।।
एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम्।
मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः।।
इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके।
सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमि।।

यह सूर्यदेव की आराधना का व्रत है। इसमें तिल का लड्डू, पुआ आदि सूर्य को समर्पित करने का विधान किया गया है। परम्परानुसार व्रत करनेवाले इस दिन भोजन में नमक, तेल एवं हल्दी वर्जित करते हैं।

रविदास जयन्ती :

भगवान् की भक्ति के मार्ग में वर्ण, लिंग और वय का कोई स्थान नहीं है – सनातन धर्म के इस तथ्य के प्रतीक, 'चमार' जाति के सन्त-शिरोमणि 'रैदास' की जयन्ती इस दिन मनायी जाती है। सन्त रविदास या रैदास भारत की सन्त परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। परम्परानुसार सन्त रविदास का जन्म संवत् 1433 में माघ पूर्णिमा को रविवार के दिन हुआ था। तथाकथित 'अछूत घर में सन्त रविदास के रूप में एक ऐसे 'रवि' का उदय हुआ, जिनके तेज से जन्म पर आधारित वर्ण-व्यवस्था के अन्धकार का नाश हुआ, जिनके पवित्र-चरित के सम्मुख रूढ़वादियों को बार-बार झुकना होना पड़ा और जिसने सरल भक्ति की ऐसी सुन्दर सरिता प्रवाहित की, जिसमें डुबकी लगाने से न केवल दलितों और पतितों को ही अनिवर्चनीय शान्ति मिली वल्कि सम्पूर्ण समाज उस सरिता की धार से पवित्र हो चला। सन्त रविदास की वाणी में सात्त्विक भक्ति का प्रवाह मुख्य रूप से पाया जाता है। सन्त रामानन्द के शिष्य रविदास ने भक्ति के द्वारा सामाजिक समरसता का जो पाठ पढ़ाया वह आज के समाज के लिए भी जाति-भेद पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का अन्त कर समरसता लाने के लिए अनुकरणीय है।

महाशिवरात्रि :

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी महाशिवरात्रि के नाम से भारत भर में प्रसिद्ध है। लोक-धारणा के अनुसार यह शंकर-पार्वती के विवाह के अवसर पर मनाया जाता है, किन्तु शास्त्रीय वचनों के अनुसार इस दिन भगवान् शंकर ने शिवलिंग का स्वरूप ग्रहण किया था। हलाँकि माघ कृष्ण की चतुर्दशी को भी लिंगोद्भव का दिन माना जाता है, किन्तु माघ और फाल्गुन का यह अन्तर इसलिए हुआ है कि दक्षिण भारत में शुक्ल पक्ष से मास प्रारम्भ हो जाता है। वस्तुतः नरक-निवारण-चतुर्दशी हो या महाशिवरात्रि, दोनों लिंगोद्भव के अवसर पर मनाया जाता है। इस दिन उपवास, सन्ध्या (प्रदोष) काल में भगवान् शंकर की पूजा एवं रात्रि में जागरण इन तीनों का माहात्म्य है।

होलिका दहन :

होलिका दहन के समय का पर्याप्त विवेचन ज्योतिष शास्त्र में किया गया है। इस प्रसंग में भद्रा का विचार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।भद्रा विष्टि करण को कहते हैं। प्रत्येक तिथि के भोग्यकाल का आधा भाग करण कहलाता है। करणों की संख्या है, जिनमें सातवाँ करण विष्टि या भद्रा के नाम से जाना जाता है। इस करण के स्वामी यम हैं। सामान्यतः सभी शुभ कार्यों में भद्रा की अवधि का निषेध किया गया है। शुक्लपक्ष में चतुर्थी और एकादशी का उत्तरार्द्ध तथा अष्टमी और पौर्णमासी का पूर्वार्ध भद्रा की अवधि है तथा कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी का उत्तरार्ध एवं सप्तमी और चतुर्दशी का पूर्वार्द्ध भद्रा कहलाता है। इस भद्रा के वास का भी विचार शास्त्र में किया गया है,जिसके अनुसार

वैशाख, ज्येष्ठ, अगहन, और आषाढ़ ,	स्वर्ग में	शुभफल
फाल्गुन, भाद्र, चैत्र, श्रावण	मर्त्यलोक में	विनाश
पौष, माघ कार्तिक आश्विन	नागलोक में	धन-प्राप्ति

इस प्रकार, भद्रा मर्त्यलोक में निवास के समय निश्चित रूप से शुभ कार्यों के लिए वर्जित है।

होलिका दहन में पूर्णिमा तिथि का पूर्वार्द्ध भद्रा कहलाता है, इसके भी तीन भाग माने गये हैं – भद्रामुख, भद्राशरीर एवं भद्रापुच्छ। भद्रामुख में होलिका दाह करने पर राष्ट्र एवं नगर का विनाश अग्निदाह से होता है।

होली :

होली का पर्व भारत में अति प्राचीन काल से मनाया जाता है। जैमिनि ने मीमांसा-सूत्र के प्रथम अध्याय के तृतीय पाद में 15-16वें सूत्र में 'होलाका' नाम से इसका उल्लेख किया है। काठक गृह्य-सूत्र में भी एक सूत्र है – **राका होलाके** (73।1)। इसकी टीका में देवपाल ने लिखा है कि स्त्रियों के सौभाग्य के लिए यह प्रातःकाल में मनाया जाता है। इसके देवता 'राका' (पूर्णचन्द्र) हैं। वात्स्यायन के कामसूत्र (1।4।42) में भी इस 'होलाका' का उल्लेख है। इसके टीकाकार जयमंगल ने फल्गुनी पूर्णिमा के दिन इसे मनाने की बात कही है। उसके अनुसार शृंग से एक दूसरे पर रंगीन जल छिड़कने की क्रीड़ा इस दिन की जाती थी। लिंग, भविष्योत्तर, वाराह आदि पुराणों में भी इसकी चर्चा है।

सामवेद के ब्राह्मण-ग्रन्थ ताण्ड्य या पंचविश में भी होली के सम्बन्ध में पर्याप्त विवरण मिलता है। वहाँ इसे सत्रयाग (वर्ष भर चलनेवाला यज्ञ) के अन्तिम दिन के उत्सव के रूप में देखा गया है।

रामनवमी व्रत :

अगस्त्य संहिता तथा वाल्मीकीय रामायण के अनुसार भगवान् श्रीराम का जन्म चैत्र शुक्ल नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में कर्क लग्न में हुआ था। अतः यह पर्व मध्याह्न-व्यापिनी है। दि0 6 अप्रैल को मध्याह्न में कर्क लग्न में नवमी तिथि, एवं पुनर्वसु नक्षत्र का योग उपलब्ध है; जबकि दूसरे दिन दि0 7 अप्रैल को नवमी तिथि प्रातःकाल में ही समाप्त हो जाती है। रामनवमी व्रत के सम्बन्ध में निर्णय लेनेवाले प्राचीन शास्त्रकारों में माधवाचार्य (14वीं शती) , म0 म0 रुद्रधर(15वीं शती), म0 म0 महेश ठाकुर(16वीं शती), कमलाकर भट्ट (17वीं शती) रत्नपाणि (19वीं शती) आदि ने अगस्त्य-संहिता का वचन उद्धृत करते हुए कहा है कि –

चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि।
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्।।

अर्थात् चैत्र मास के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि यदि पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त हो और मध्याह्न काल का योग हो तो यह वहुत पुण्य देनेवाली होती है।

इस प्रकार यह पर्व मध्याह्न व्यापिनी है। मध्याह्न-काल के सम्बन्ध में गणना नीचे दी जा रही है।

शास्त्र के अनुसार सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त दिन कहलाता है। यह जितने घंटे मिनट का होगा उसे दिनमान कहेंगे। सूर्यास्त के समय का दूना कर लेने पर भी घंटा-मिनट में दिनमान निकल आता है। इस दिनमान का पन्द्रहवाँ भाग एक मुहूर्त कहलाता है। काल की दृष्टि से दिन को पाँच भागों में विभक्त किया गया है – 1. प्रातःकाल 2. संगव-काल 3. मध्याह्न-काल 4. अपराह्ण-काल तथा 5. सायाह्न-काल।

प्रातःकालो मुहूर्तस्त्रीन् संगवस्तावदेव हि।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्णस्ततः परम्।।
सायाह्नस्त्रिमुहूर्तं स्याद् यावदस्तंगतो रविः।

अर्थात् 3 मुहूर्त प्रातः, 3 मुहूर्त संगव, 3 मुहूर्त मध्याह्न, 3 मुहूर्त अपराह्ण तथा 3 मुहूर्त सायाह्न कहलाते है।

शास्त्रीय निर्णय के अनुसार यह ध्यान देने योग्य है कि नवमी तिथि के मान के अनुसार कुल तीन स्थितियाँ हो सकती है – 1. जब एक ही दिन मध्याह्न काल में नवमी हो। 2. जब दोनों दिन मध्याह्न काल में नवमी हो। 3. जब किसी दिन भी मध्याह्न में नवमी न हो। पहली स्थिति में सभी शास्त्रकार एकमत हैं कि रामनवमी उसी दिन होगी, जिस दिन मध्याह्न काल में नवमी तिथि है। दूसरी और तीसरी स्थिति में यह निर्णय लिया गया है कि अष्टमीविद्धा नवमी त्याज्य है। ऊपर दी गयी गणना से स्पष्ट है कि इस वर्ष पहली स्थिति है। अतः अष्टमीविद्धा का त्याग करने की परिस्थिति ही नहीं है।

रामनवमी पर्व के निर्णय में जब दोनों दिन मध्याह्न में नवमी हो और दशमी तिथि का क्षय हो, जिसके कारण पूर्व नियम के अनुसार दूसरे दिन नवमी मानने पर रामनवमी-व्रत की पारणा का लोप हो जाता है।क्योंकि अगले दिन एकादशी तिथि हो जायेगी और एकादशी में पारणा नहीं होती है। इस परिस्थिति में भी अष्टमीविद्धा नवमी के दिन व्रत करने की वात कही गयी है। अव रामनवमी के विषय

में विभिन्न विद्वानों के मत का सारांश नीचे दिया जा रहा है।

(क) चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के अवतार-ग्रहण के उपलक्ष्य में रामनवमी व्रत की परम्परा प्राचीन काल से रही है। वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड के 18वें सर्ग के अनुसार चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र और कर्क लग्न में कौशल्या के गर्भ से श्रीराम का जन्म हुआ।

(ख) भारत-रत्न पाण्डुरंग वामन काणे ने 'धर्मशास्त्र का इतिहास' नामक कालजयी ग्रन्थ में रामनवमी की तिथि के निर्धारण में धर्मशास्त्रीय-ग्रन्थों के आधार पर यह निर्णय दिया है कि यदि नवमी तिथि दो दिन हो, तो जिस दिन मध्याह्न में नवमी तिथि हो उस दिन रामनवमी मनायी जानी चाहिए।

(ग) रामनवमी व्रत के निर्णय में लग्न नक्षत्र एवं तिथि तीनों का समावेश किया जाता है। इस व्रत के सम्बन्ध में निर्णय देते हुए माधवाचार्य (14वीं शती) ने अपने ग्रन्थ 'कालमाधव' में लिखा है –

चैत्रशुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि।
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्।

इस प्रकार माधवाचार्य ने इसे मध्याह्न-व्यापिनी माना है, अर्थात् जिस दिन दोपहर में नवमी तिथि होगी, उस दिन रामनवमी व्रत होगा। उन्होंने रामनवमी पर्व के सम्बन्ध में विचार कर अन्त में सिद्धान्त रूप में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है – **सर्ववाक्यपर्यालोचनया नक्षत्ररहितापि मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति सिद्धम्।** (कालमाधव : सं0 डा0 ब्रजकिशोर साई, प्रकाशक– चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी प्रथम संस्करण पृ0 285)

(घ) कमलाकर भट्ट कृत प्रसिद्ध धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ 'निर्णय-सिन्धु' के अनुसार भी यह तिथि मध्याह्न-व्यापिनी है। इस ग्रन्ध के अनुसार पूर्व दिन में ही मध्याह्न के समय नवमी तिथि रहने पर उसी दिन व्रत होना चाहिए– **पूर्वेद्युरेव मध्याह्नयोगे कर्मकालव्याप्तेः सैव ग्राह्या।** इस निर्णय के पक्ष में ग्रन्थकार ने अगस्त्य-संहिता के वचन को उद्धृत किया है, जिसके अनुसार श्रीराम का जन्म पुनर्वसु नक्षत्र एवं कर्क लग्न में हुआ था। यहाँ यह ध्यातव्य है कि चैत्र मास में मीन लग्न के अन्तिम चरण में या मेष के प्रथम चरण में सूर्योदय होता है। इसलिए कर्क लग्न निश्चित रूप से मध्याह्न के समय होगा। अतः शास्त्रकारों ने इसे मध्याह्न-व्यापिनी माना है। नवमी तिथि की एक अन्य परिस्थिति का भी उन्होंने उल्लेख किया है कि यदि दशमी तिथि का क्षय अथवा वृद्धि नहीं हो तो मध्याह्नव्यापिनी होने के कारण वैष्णवों द्वारा भी अष्टमीविद्धा ही करनी चाहिए –**दशमीवृद्ध्यभावेऽष्टमीविद्धाया एव मध्याह्नव्यापित्वे क्षये च वैष्णवैरपि विद्धैवोपोष्येत्यर्थः।**

(ङ) धर्मशास्त्र की परम्परा में महामहोपाध्याय महेश ठाकुर का नाम आदर के साथ लिया जाता है। वे मिथिला के राजा भी हुए थे। उन्होंने 'तिथितत्त्वचिन्तामणि' नामक ग्रन्थ में प्रथमतः लिखा है – चैत्रशुक्ल नवमी रामनवमी, सा च मध्याह्नयोगिनी ग्राह्या। इसके प्रमाण में उन्होंने अगस्त्यसंहिता को उद्धृत करते हुए लिखा है कि –

चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि।
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्।

इत्यगस्त्यसंहितोक्तेश्च इति मत्कृतस्मृतिरत्नाकरे।

यदि दोनों दिन मध्याह्न काल में नवमी हो उस स्थिति में अथवा किसी दिन भी मध्याह्न में नवमी नहीं हो उसी स्थिति में अष्टमीविद्धा नवमी का त्याग होगा अन्यथा यह तिथि मध्याह्न-व्यापिनी है, जिस दिन मध्याह्न में नवमी तिथि होगी, उसी दिन व्रत होगा।

(च) रत्नपाणि मिथिला के एक श्रेष्ठ निवन्धकार हैं। इन्होने खण्डवलाकुल के राजा छत्रसिंह की आज्ञा से दरभंगा में कृत्यसागर नामक धर्मशास्त्रीय निवन्ध लिखा था। इन्होंने भी कृत्यरत्नाकर में स्पष्ट कहा है कि यह मध्याह्न-व्यापिनी तिथि है और पुनर्वसु नक्षत्र का योग अत्यन्त प्रशस्त माना गया है – तथा च दिनद्वये नवमीव्याप्तौ मध्याह्नव्याप्तपुनर्वस्वृक्षसंयुक्तैव नवम्युपोष्येति सिद्धम्। अथ तादृश्यष्टमीयुक्ताप्युपोष्या स्यादिति तु नाशङ्कनीयम्। (कृत्यरत्नाकर : पृ0 104, मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा 1977 ई0)

(छ) पण्डित रामचन्द्र झा मिथिला के प्रसिद्ध वर्षकृत्यकार हैं। इन्होंने भी वर्षकृत्य के प्रथम भाग में रामनवमी-पूजा के प्रसंग में टिप्पणी के रूप में धर्मशास्त्रीय निर्णय किया है कि यह मध्याह्नव्यापिनी है –

इयं नवमी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। तथा हि अगस्त्यसंहितायां – चैत्रशुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि। सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्। (अभावे केवलापि सदोपोष्या नवमीशब्दसंग्रहात्)। दिनद्वये मध्याह्नव्यापिनी चेत् पूर्वदिने पुनर्वसुनक्षत्रयुक्तामपि त्यक्त्वा परैव कार्या। तथा हि तत्रैव – नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः। उपोषणं नवम्यां च दशम्यां चैव पारणम्। पुनश्च तत्रैव – दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत् विद्धा त्याज्यैव वैष्णवैः। तदन्येषां च सर्वेषां व्रतं तत्रैव निश्चितम्।

अक्षय तृतीया, परशुराम जयन्ती :

भविष्य पुराण के 30 वें अध्याय के अनुसार सत्ययुग का आरम्भ इसी तिथि से हुआ था अतः इस दिन जो कुछ भी दान, स्नान, जप, होम, वेदाध्ययन आदि पवित्र कर्म किये जाते हैं, उनका फल अक्षय होता है। इस दिन रात्रि में भोजन करने का निषेध किया गया है। इसी दिन रेणुका के गर्भ से परशुराम के रूप में भगवान् विष्णु का अवतार माना जाता है।

श्री जानकी नवमी :

वैशाख शुक्ल नवमी के दिन जानकी का अवतार माना जाता है। यह भी मध्याह्नव्यापिनी तिथि है,अर्थात् जिस दिन दोपहर में नवमी तिथि हो उसी दिन यह व्रत किया जाता है।

नरसिंहावतार :

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी नृसिह चतुर्दशी के नाम से जाना जाता है। मान्यता के अनुसार भगवान् विष्णु ने इस दिन अवतार ग्रहण कर हिरण्यकशिपु का संहार कर अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी।

वटसावित्री व्रत :

महाभारत (वनपर्व 293-299), मत्स्यपुराण 208-214, स्कन्द-पुराण प्रभास खण्ड अध्याय 166 एवं विष्णुधर्मोत्तर-पुराण 2।36-41 आदि स्थलों पर सावित्री और सत्यवान् की कथा का उल्लेख हुआ है,

जिसमें अपने पातिव्रत्य के बल पर अपने पति कए प्राण बचाने के लिए यमराज से भी नहीं डरनेवाली सावित्री का उल्लेख हुआ है। इस दिन सधवा स्त्रियाँ पति की लम्बी आयु के लिए वट-वृक्ष की पूजा करती हैं। वृक्ष में कच्चा धागा लपेटा जाता है और सावित्री की कथा सुनी जाती है।

सोमवती अमावस्या :

सोमवार के साथ यदि अमावस्या तिथि का योग होने पर सोमवती अमावस्या का योग होता है। भविष्योत्तर पुराण की कथा के अनुसार शर-शय्या पर लेटे भीष्म पितामह ने इस व्रत का उपदेश किया था। युद्ध समाप्ति के बाद पाण्डवों के वंश भी समाप्त होने के कगार पर पहुँच गया। एक मात्र उत्तरा गर्भवती थी। वह गर्भस्थ शिशु भी अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से दग्ध हो चुका था। ऐसी परिस्थिति चिन्तित युधिष्ठिर को भीष्म पितामह ने उत्तरा के लिए इस वैष्णव व्रत का उपदेश किया। इसमें नदी के किनारे पीपल के वृक्ष के नीचे भगवान् विष्णु की पूजा कर 108 संख्या में कोई फल लेकर 108 बार वृक्ष की परिक्रमा विधान किया गया है।

'धर्मशास्त्र का इतिहास' ग्रन्थ में महामहोपाध्याय पाण्डुरंग वामन काणे ने लिखा है कि- ''सोमवार की अमावस्या अति पुनीत होती है; कालविवेक (492, भविष्यपुराण); हेमाद्रि (काल, 643); वर्षक्रिया कौमुदी (9) : आज के दिन लोग (विशेषत: नारियाँ) अश्वत्थ वृक्ष के पास जाती है, विष्णु पूजा करती है तथा वृक्ष की 108 बार प्रदक्षिणा करती है; व्रतार्क (पाण्डुलिपि, 350बी 356); धर्मसिन्धु (23); व्रतार्क का कथन है कि इसका उल्लेख निबन्ध में नहीं हुआ है, यह मात्र प्रचलन पर आधृत है।''

इन निबन्धों के अतिरिक्त 'रुद्रधर' (14वीं शती) ने भी 'वर्षकृत्य' में विस्तार से इसका उल्लेख किया है तथा 'भविष्यपुराण' से उद्धृत कथा भी दी है। वेंकटेश्वर स्टीम्, मुंबई से प्रकाशित 'भविष्य-पुराण' के संस्करण में यह कथा उपलब्ध नहीं है, किन्तु यह उपलब्ध 'भविष्य-पुराण' के संस्करण की अपनी क्षेत्रीय सीमा है। दूसरे संस्करणों में अन्वेषण कर इस कथा का मूल देखा जा सकता है। इसके लिए बंगाल से प्रकाशित संस्करण अन्वेष्टव्य है; क्योंकि उत्तर भारतीय पौराणिक पाठ बहुधा बंगाल के संस्करण में उपलब्ध होते हैं। किन्तु हेमाद्रि के 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' में उल्लेख उपलब्ध होने से इतना तो निश्चित है कि 13वीं शती में यह व्रत भारत के विशाल क्षेत्र में प्रचलन में था। आज भी सन्तान की रक्षा तथा उन्नति के लिए अनेक स्थानों पर यह व्रत किया जाता है। किसी किसी क्षेत्र में पीपल के वृक्ष की परिक्रमा करते हुए कच्चा धागा लपेटने का व्यवहार है।

गंगा दशहरा :

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी तिथि को स्वर्ग से गंगा के अवतरण के उपलक्ष्य में गंगादशहरा का व्रत किया गाता है। इस दिन गंगा में स्नान करने से दस प्रकार के पापों का शमन होता है। एक अन्य उल्लेख के अनुसार इस दिन गंगा का अवतरण दस योग में हुआ था।ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, दशमी तिथि, मंगलवार या बुधवार, हस्त नक्षत्र, व्यतीपात योग, गर करण, आनन्द योग, कन्या राशि में चन्द्रमा एवं वृष राशि में सूर्य – ये दश योग कहे गये हैं। इनमें से योगों की संख्या जिस वर्ष जितनी अधिक होगी, दशहरा का व्रत उतना प्रशस्त माना जायेगा। यदि ज्येष्ठ में मलमास भी हो , फिर भी मलमास में ही दशहरा होती है। निर्णय-सिन्धु में कमलाकर ने इसे दस दिनों तक चलनेवाला पर्व बतलाया है। उनके अनुसार ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा से गंगा के तट पर गंगा स्तोत्र का वृद्धि पाठ प्रतिपदा के दिन एक बार,

द्वितीया के दिन दो बार इत्यादि के क्रम से करना चाहिए। इस प्रकार दशमी के दिन दश बार स्तोत्र का पाठ, षोडशोपचार पूजन आदि करना चाहिए। चावल के पीठा से बने जलीय जीवों का समर्पण भी करना चाहिए। स्तोत्र एवं पाठ की विधि धर्म-सिन्धु में उद्धृत किया गया है।

श्रीजगन्नाथ रथयात्रा :

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को पुरी में भगवान् जगन्नाथ की रथयात्रा का उत्सव मनाया जाता है। इस दिन इसकी अनुकृति में देश के विभिन्न वैष्णव मन्दिरों में भी इस उत्सव का आयोजन होता है।

हरिशयन एकादशी :

आषाढ़ शुक्ल एकादशी के दिन चातुर्मास्य व्रत का आरम्भ होता है। इस दिन से भगवान् क्षीरसागर में शयन करते हैं।

गुरु पूर्णिमा :

व्यासजी के जन्म के अवसर पर इस दिन व्यास की पूजा होती है तथा गुरुकुलों में गुरु की पूजा की जाती है। वैदिक काल में इसी दिन से वेद-पाठ का सत्रारम्भ माना गया है।

नागपंचमी (मौना पंचमी) :

भारत में नाग-पूजा की प्राचीन परम्परा है। उत्तर भारत में श्रावण कृष्ण की पंचमी से नागपूजा प्रारम्भ होकर पन्द्रह दिनों तक चलती है। कृष्णपक्ष की पंचमी को मौनापंचमी के नाम से जाना जाता है। इस दिन नीम का पत्ता, आम की सूखी गुठली, खट्टा अनार, जम्बीरी नीबू आदि के भक्षण की परम्परा है। कटहल खाना भी इस दिन प्रशस्त माना जाता है। कहीं कहीं घरों में नीम की डालियाँ लगायी जाती है।

मधुश्रावणी व्रत :

नव-विवाहिता अपने सौभाग्य की वृद्धि के लिये आषाढ़ कृष्ण पंचमी से लेकर नाग देवता की पूजा करती हैं। इस पूजा का समापन श्रावण शुक्ल तृतीया को मधुश्रावणी के दिन होता है। इस दिन गौरी की पूजा विशेष रूप से होती है।

नागपंचमी :

पन्द्रह दिनों तक चलनेवाली नाग-पूजा का समापन इस दिन होता है। सन्ध्या काल धान का लावा, चूहे के द्वारा खोदी गयी मिट्टी, कपास के बीज आदि को नागमन्त्र से अभिमन्त्रित कर घर के चारों ओर बिखेरने की भी परम्परा कहीं कहीं है। इस दिन नीम की डाली घरों में लगाया जाता है।

तुलसी-जयन्ती :

रामचरितमानस के अमर गायक एवं परम रामभक्त महाकवि तुलसीदास की जयन्ती परम्परागत रूप में श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन महायी जाती है।

रक्षाबन्धन :

श्रावण की पूर्णिमा को अपराह्ण में एक कृत्य किया जाता है। श्रेष्ठ व्यक्ति द्वारा आशीर्वाद देने

योग्य लोगों को कलाई पर रक्षा-सूत्र बाँधने का विधान किया गया है। आजकल बहन द्वारा भाई की कलाई पर राखी बाँधने की परम्परा भव्य स्वरूप धारण कर चुकी है। बहन भाई को प्रातःकाल से ही राखी बाँध सकती है। इसमे कोई दोष नहीं है। 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में पी0 वी0 काणे ने जहाँ गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं अन्य स्थलों में भी बहन के द्वारा भाई को राखी बाँधने की परम्परा का उल्लेख किया है, वहाँ उन्होंने भद्रा में इसे नहीं करने का उल्लेख नहीं किया है।

रक्षाबन्धन के सम्बन्ध में एक भ्रान्ति यह फैली हुई है कि भद्रा में बहन भाई को राखी न बाँधे। पंचांगों और कैलेंडरों में ऐसा दिखाया जाता है। इसके समर्थन में निम्नलिखित पंक्ति उद्धृत की जाती रही है कि भद्रा में श्रावणी पूर्णिमा का कृत्य नहीं करना चाहिए। इस पंक्ति को 'निर्णय-सिन्धु' में कमलाकर भट्ट ने उद्धृत किया है।

किन्तु यह उपाकर्म तथा रक्षाबन्धन के प्राचीन स्वरूप के सन्दर्भ में कहा गया है। हेमाद्रि (1260-70 ई0) ने चतुर्वर्ग-चिन्तामणि ग्रन्थ में भविष्योत्तर पुराण को उद्धृत करते हुए लिखा है कि इन्द्राणी ने इन्द्र को रक्षासूत्र बाँधकर उन्हें असुरों को हराने के योग्य बनाया था। इसकी अगली कथा है कि असुरों की ओर से राजा बलि ने जब यह सुना तो उसने भी अपने गुरु शुक्राचार्य को रक्षासूत्र बाँध देने की प्रार्थना की। तब शुक्राचार्य ने भी रक्षिका की विधिवत् पूजा कर बलि को रक्षासूत्र बाँधकर उसे बली बनाया। इसी घटना के क्रम में उद्धृत **येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल।।** मन्त्र आज भी पढ़ा जाता है।

इस प्रकार युद्ध के लिए जाते समय पुरोहित अथवा श्रेष्ठ व्यक्त के द्वारा बाँधा जानेवाला रक्षासूत्र भद्रा में नहीं बाँधना चाहिए, किन्तु भाई-बहन से सम्बन्धित इस त्योहार में भद्रा का विचार नहीं चोना चाहिए। प्रातःकाल से ही यह त्योहार मनाया जा सकता है। इससे कोई दोष नहीं होगा।

श्रीकृष्णाष्टमी व्रत :

दुर्गासप्तशती में तीन प्रकार की रात्रियों का उल्लेख हुआ है – कालरात्रि, महारात्रि एवं मोहरात्रि। इनमें से मोहरात्रि के निशीथ काल में कारागार में भगवान् कृष्ण एवं यशोदा के गर्भ से जगदम्बा की उत्पत्ति का वर्णन हुआ है। इनमें से कृष्णाष्टमी की रात्रि मोहरात्रि है, जिसमें एक ओर यशोदा के गर्भ से जगदम्बा देवी की उत्पत्ति हुई तो दूसरी ओर देवकी के गर्भ से भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार हुआ।

कृष्णाष्टमी व्रत के सम्बन्ध में कहागया है कि ''यदि जयन्ती (रोहिणीयुक्त अष्टमी) एक दिन वाली है, तो उसी दिन उपवास करना चाहिए, यदि जयन्ती न हो तो उपवास रोहिणी युक्त अष्टमी को होना चाहिए, यदि रोहिणी से युक्त दो दिन हों तो उपवास दूसरे दिन किया जाता है, यदि रोहिणी नक्षत्र न हो तो उपवास अध रात्रि में अवस्थित अष्टमी को होना चाहिए या यदि अष्टमी अर्धरात्रि में दो दिनों वाली हो या **यदि अध रात्रि में न हो तो उपवास दूसरे दिन किया जाना चाहिए।**'' (धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ भाग, पृष्ठ संख्या- 55)

कुशी अमावस्या :

भाद्र मास की अमावस्या को उखाड़ा गया कुश एक वर्ष तक पर्युषित अर्थात् बासी नहीं होता है – ऐसा कहा गया है। अतः यह तिथि कुशोत्पाटनी अमावास्या के नाम से भी प्रसिद्ध है।

हरितालिका व्रत (तीज) :

हरितालिका नारियों का महत्त्वपूर्ण व्रत है। ऐसा कहा गया है कि भगवान् शंकर के प्रति समर्पिता पार्वती को इस दिन उनकी सखियों ने भगवान् शंकर के पास पहुँचा दिया था, इसके उपलक्ष्य में स्त्रियाँ अपने सौभाग्य के लिए व्रत रखतीं हैं। 'व्रतराज' नामक ग्रन्थ में इस के नामकरण की व्याख्या इस प्रकार की गयी है – **आलीभिर्हरिता यस्मात् तस्मात्सा हरितालिका।** रुद्रधर ने इस व्रत की एक कथा दी है, जो भविष्योत्तर-पुराण से संकलित कही गयी है। इस कथा के अनुसार महादेव पार्वती से यह कथा सुनाते हैं कि हरितालिका व्रत करने से पार्वती के सौभाग्य में इतनी वृद्धि हुई कि वह देवाधिदेव महादेव को प्राप्त कर सकी। इस कथा के आरम्भ में अर्द्धनारीश्वर की स्तुति अत्यन्त प्रसिद्ध है –

मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय।।

पितृपक्ष का आरम्भ :

पन्द्रह दिनों तक चलनेवाला पितृपक्ष पितरों के निमित्त तर्पण आदि के लिए विहित है। इसका आरम्भ प्रतिपदा तिथि को होता है। इस दिन से जलाशय में जाकर प्रतिदिन पितरों को जल देने की परम्परा है।

जीमूतवाहन व्रत :

स्त्रियाँ अपने पुत्रों की आयु के लिए यह व्रत रखती है। विद्याधर राजा जीमूतवाहन, जिन्होंने अपना शरीर देकर शंखचूड़ नाग की रक्षा गरुड़ से की थी, इस व्रत के देवता हैं। यह कथा बौद्ध साहित्य में भी प्रसिद्ध है। सम्राट् हर्षवर्द्धन का एक संस्कृत नाटक नागानन्द इसी कथा पर आधारित है।

मातृनवमी :

पितृपक्ष की नवमी तिथि के दिन मृत माताओं अर्थात् स्त्रियों के निमित्त तर्पण आदि का विधान किया गया है।

पितृपक्षीय पार्वणान्त :

पितृपक्ष के अन्तिम दिन परम्परानुसार पार्वण करने का विधान किया गया है।

शारद नवरात्रारम्भ

दुर्गासप्तशती के अनुसार असुरों के संहार के लिए सभी देवों ने एकत्रित होकर अपनी अपनी शक्तियाँ एकत्रित कर एक नारी-स्वरूप को उत्पन्न किया। इस नारीस्वरूप का मुख शिव के तेज से, यम के तेज के केश, विष्णु के तेज से बाहें और ब्रह्मा के तेज से उनके दोनों पैर निर्मित हुए। इसी प्रकार अन्य देवों के तेज से अन्य अंग-प्रत्यंगों का निर्माण हुआ। दुर्गासप्तशती के द्वितीय अध्याय में इस निर्माण का स्पष्ट वर्णन किया गया है। सभी देवताओं ने उन्हें अस्त्र-शस्त्रों से समृद्ध किया। इस प्रकार सभी देवों की समन्वित शक्ति देवी दुर्गा की वार्षिक महापूजा शारद नवरात्र में करने का विधान दुर्गासप्तशती में किया गया है – **शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी (अध्याय 12)।**

इस नवरात्र का आरम्भ आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को होता है। विद्यापति कृत दुर्गाभक्तितरङ्गिणी

के अनुसार इस दिन पूर्वाह्न में ही निषिद्ध काल को त्याग कर कलशस्थापन होनी चाहिए। कलश के आधार पर षट्दल कमल का निर्माण कर पवित्र स्थान की मृत्तिका की वेदी वनाकर उस पर यव डाल कर शास्त्रानुसार स्थापना करनी चाहिए।

पत्रिका-प्रवेश

पत्रिका-प्रवेश की पूर्व-सन्ध्या में विल्व-वृक्ष के नीचे वृक्षपूजन के साथ-साथ विल्व-युगल की पूजा होती है। उसे लाल वस्त्र से बाँधकर छोड़ दिया जाता है। यह विल्वाभिमन्त्रण की विधि कहलाती है। प्रातःकाल मण्डप में इसका प्रवेश कराया जाता है।

इसी दिन प्रातःकाल देवी को दिव्य-चक्षु प्रदान कर प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। इसके साथ दर्शनार्थियों के लिए पट खुल जाता है।

महाष्टमी एवं महानवमी

इस दिन प्रातःकाल 9:17 मिनट तक अष्टमी है। देवी पूजन में नवमी विद्धा अष्टमी तथा अष्टमी विद्धा नवमी प्रशस्त तिथि मानी गयी है; अतः इसी दिन महाष्टमी एवं महानवमी की पूजा होगी। महाष्टमी की निशा-पूजा पूर्वरात्रि में ही हो जायेगी।

विजयादशमी

इस दिन प्रातःकाल में देवी-प्रतिमा का विसर्जन तथा जयन्ती-धारण किया जाता है। परम्परानुसार लोग श्रेष्ठ व्यक्तियों के घर जाकर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करते हैं। इस दिन तीर्थ-यात्रा पर निकलने की भी परम्परा है।

शरत् पूर्णिमा। कोजागरा

आश्विनी पूर्णिमा का चन्द्रोदय जिस दिन होता है, उस दिन लक्ष्मी की पूजा की जाती है तथा-मिथिला में नव-विवाहित दम्पति की मंगल कामना के लिए उनके ऊपर दूर्वाक्षत छिड़का जाता है।

धनतेरस/ धन्वन्तरि त्रयोदशी

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को स्वास्थ्य के देवता धन्वन्तरि की उत्पत्ति हुई थी। परम्परानुसार समुद्र मन्थन के समय इसी दिन स्वर्ण कलश में अमृत लिए हुए धन्वन्तरि प्रकट हुए थे। इसलिए प्राचीन चिकित्सा शास्त्रों के अनुसार इस दिन धन्वन्तरि महाराज की पूजा-आराधना होती है। धनतेसर के सम्वन्ध में आजकल सवसे वड़ी भ्रान्ति फैलायी गयी है कि यह धन से सम्वन्धित पर्व है। यह मीडिया तथा व्यापारियों के द्वारा फैलाया गया है ताकि लोग इस दिन अझिक से अधिक सोना-चाँदी इत्यादि खरीदें।

क्रमशः ....

❑❑

आयुष्मान भारत योजना
प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (AB – PMJAY)

महावीर कैंसर संस्थान :

योजना से सम्बद्ध पहला गैर-सरकारी अस्पताल

महावीर कैंसर संस्थान के जन सम्पर्क पदाधिकारी मगनदेव नारायण सिंह ने सूचना दी है कि यह योजना गरीबों, असहायों, असमर्थो एवं उपेक्षित रूग्ण परिवारों के लिए अमृतघट के समान है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दामोदर भाई मोदी द्वारा शुरू की गयी इस योजना के बारे में सोचना और उसे जमी़ पर उतारना एक सपने को साकार करने जैसा है। उसमें तुर्रा यह कि इस योजना को 10 करोड़ से अधिक चयनित परिवारों और 50 करोड़ से अधिक व्यक्तियों को इसका लाभ मिलेगा। प्रतिवर्ष प्रति परिवार 5 लाख रूपये तक का स्वास्थ्य लाभ मिलेगा। यह सुविधा सरकारी या सूचीबद्ध निजी अस्पतालों से प्राप्त किया जा सकता है। इस योजना क शुभारम्भ 23 सितम्बर' 2018 को रांची (झारखण्ड) में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दामोदर भाई मोदी के कर-कमलों से हुआ है। हमें इस बात पर गर्व है कि महावीर कैंसर संस्थान की कार्यकुशलता, दक्षता और कैंसर चिकित्सा में निपुणता को देखते हुए इस संस्थान को आयुष्मान भारत योजना में सूचीबद्ध किया गया है। यह बिहार का पहला गैर-सरकारी अस्पताल है जिसे इस योजना से जोड़ा गया है।

क्या है यह योजना

यह योजना एक स्वास्थ्य बीमा है जिसका लाभ 10 करोड़ परिवार ले सकता है।

- इस योजना के तहत प्रत्येक परिवार प्रत्येक वर्ष 5 लाख तक का चिकित्सा लाभ ले सकता है।
- इसके तहत 1354 स्वास्थ पैकेज तैयार किया गया है। यहां तक कि कोरोनरी बायपास, घुटने का बदलाव एवं स्टेंटिंग जैसा इलाज भारत सरकार के दर से 15 प्रतिशत से 20 प्रतिशत सस्ते दर पर किया जायगा।
- यह योजना बिना कागजात और बिना रूपये के रोगियों की चिकित्सा का है। अर्थात, बिना किसी कागजात और बिना पैसे के चिकित्सा का लाभ लिया जा सकता है।
- परिवार के सभी सदस्यों को इसका लाभ मिल सकता है। इसके तहत न तो एक परिवार के सदस्यों की संख्या निर्धारित की गयी है और न आयु निर्धारित है।
- इसका लाभ लेने के लिए लाभकर्ता को गोल्डेन कार्ड, यदि गोल्डेन कार्ड नही है तो गोल्डेन कार्ड बनाने के लिए राशन कार्ड, आधार कार्ड, हाउस होल्डिंग नम्बर एवं अपना फोटो साथ लाना होगा।
- सभी सूचीबद्ध अस्पतालों में एक "आयुष्मान मित्र सहायता डेस्क" होगा जहां से सम्पर्क कर यह लाभ लिया जा सकता है।
- इस योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों एवं शहरी क्षेत्रों के लोग भी लाभ ले सकते हैं।

योजना के तहत काम शुरू हो चुका है।

योजना का दीप जलाकर उद्घाटन करते श्री महावीर स्थान न्यास समिति के सचिव, आचार्य किशोर कुणाल, बिहार स्वास्थ्य सुरक्षा समिति के मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी श्री मनोज कुमार (भा. प्र.से.), उप सचिव श्री अमिताभ सिंह, संस्थान के निदेशक, डा० विश्वजीत सन्याल, एसोसियेट निदेशक, डा० मनीषा सिंह एवं अधीक्षक डा० एल० बी० सिंह।

महावीर कैंसर संस्थान में इस योजना के तहत काम शुरू हो गया है। इसका शुभारम्भ पटना के श्री महावीर स्थान न्यास समिति के सचिव एवं संस्थान के संस्थापक आचार्य किशोर कुणाल जी के कर-कमलों से दिनांक : 20 नवम्बर' 2018 को समारोहपूर्वक हुआ है। समारोह के विशिष्ट अतिथि थे - बिहार स्वास्थ्य सुरक्षा समिति के मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी श्री मनोज कुमार (भा.प्र.से.)। श्री कुमार अपनी पूरी टीम के साथ समारोह में सिरकत किया।

समारोह को मुख्य अतिथि के पद से सम्बोधित करते हुए आचार्य किशोर कुणाल ने कहा कि यह योजना अत्यंत जनोपयोगी है। इस योजना के लाभार्थियों के लिए संस्थान के 'ए' ब्लॉक में 40 बिस्तर सुनिश्चित कर दिया गया है।

विशिष्ट अतिथि पद से बोलते हुए श्री कुमार ने कहा कि इस अस्पताल में कैंसर मरीजों की भीड़ को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि कैंसर की चिकित्सा यहां पूर्णत: और सटीक होता है। इसी को मद्देनजर देखते हुए इस अस्पताल को आयुष्मान भारत योजना से जोड़ा गया है।

❑❑

महावीर मन्दिर में सन्त रविदास-जयन्ती का कार्यक्रम आयोजित
दिनांक १९ फरवरी, २०१९

सन्त रविदास या रैदास भारत की सन्त परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। परम्परानुसार सन्त रविदास का जन्म संवत् 1433 में माघ पूर्णिमा को रविवार के दिन हुआ था। दिनांक 19 फरवरी, 2019 को महावीर मन्दिर के परिसर में एक भजन-सन्ध्या एवं श्रद्धांजलि का कार्यक्रम हुआ। इस अवसर पर न्यायमूर्ति राजेन्द्र प्रसाद, श्री जिया लाल आर्य, श्री वासुदेव राम, डॉ. डोमन दास, उदय शंकर शर्मा 'कविजी' एवं आचार्य किशोर कुणाल ने महावीर मन्दिर में स्थापित प्रतिमा पर माल्यार्पण किया तथा उनके जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके द्वारा समाज सुधार के स्वरूप की चर्चा की। न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि रविदास ने समाज को एकसूत्र में बाँधने का प्रयास किया था, जिसमें वे एक सीमा तक सफल भी हुए। इस कार्यक्रम का संचालन पण्डित भवनाथ झा ने किया। मगही अकादमी के पूर्व अध्यक्ष श्री उदयशंकर शर्मा ने रविदासजी के समाज-दर्शन पर कहा कि वे सामाजिक एकता के सूत्रधार थे।

आचार्य किशोर कुणाल ने महावीर मन्दिर के द्वारा सन्त रविदासजी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि के रूप में मन्दिर के द्वारा सामाजिक भेदभाव से ऊपर उठकर जनहित में किये गये कार्यों की सूचना दी। उन्होंने कहा कि सन्त रविदासजी के गुरु जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की जयन्ती के अवसर पर सीतामढी के पुनौरा धाम में सीता-रसोई आरम्भ किया गया है, जिसमें सभी तीर्थयात्रियों को नि:शुल्क भोजन की व्यवस्था की गयी है। अयोध्या में भी महावीर मन्दिर के द्वारा राम-रसोई का शुभारम्भ किया जायेगा। महावीर कैंसर संस्थान में 18 वर्ष तक के सभी कैंसर पीडितों के नि:शुल्क इलाज की भी सूचना दी। श्री रामकिशोर दास तथा श्री निरालाजी ने रविदास के भजनों का गायन किया।

इस अवसर पर मन्दिर द्वारा संचालित 'सन्त रविदास सेवा समिति', पटना द्वारा डा0 डोमन दास के संचालन में एक शोभा-यात्रा भी 11:00 बजे निकाली गयी। यह शोभा-यात्रा करबिगहिया स्थित कार्यालय से चलकर चिरैयाटाँड पुल होते हुए महावीर मन्दिर के सामने से गुजरकर जी0 पी0 ओ0 गोलम्बर, एवं डाकबंगला चौराहा होकर गांधी मैदान, एक्जीबिशन रोड, होते हुए महावीर मन्दिर में 2:00 बजे शाम में समाप्त हुई।

"जात-पाँत पूछे नहिं कोय, हरि को भजै सो हरि को होय"

पाँच सौ वर्षों के लम्बे अन्तराल के बाद, महावीर मन्दिर पटना के तत्त्वावधान में स्थापित

स्वामी रामानन्द सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का संवाहक एवं नयी चेतना से ओत-प्रोत

रामानन्द

क्रान्तिदर्शी कबीर

रामावत संगत

लोकनायक तुलसीदास

संत शिरोमणि रविदास

इसमें दीक्षित होने के लिए आप
सब सादर आमन्त्रित हैं।

साभार,

निवेदक- महावीर मन्दिर
पटना जंक्शन के समीप, पटना

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

डाक-पंजीयन सं.- पी.टी. 443

मुद्रण : प्रकाश इन्प्रेशन्स, नयाटोला, पटना